दृष्टि The Vision

Quick Book

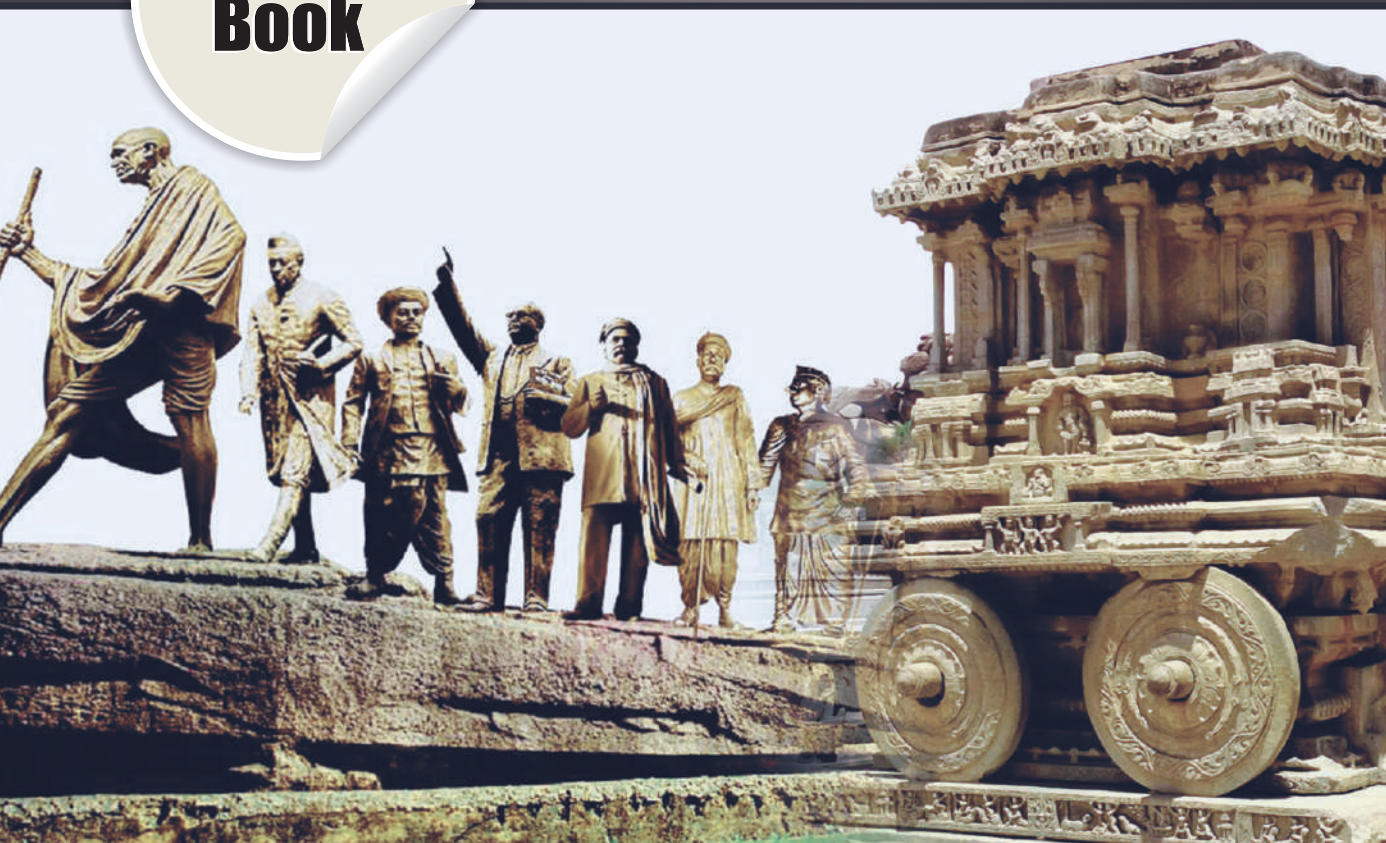

भारतीय इतिहास एवं राष्ट्रीय आंदोलन

IAS, PCS सहित अन्य एकदिवसीय परीक्षाओं (जैसे– NDA, CDS, CAPF, SSC, CPO, UGC-NET इत्यादि) के लिये समान रूप से उपयोगी

Think IAS

दृष्टि The Vision

Think Drishti

Quick Book श्रृंखला की पुस्तकें

NCERT श्रृंखला की पुस्तकें

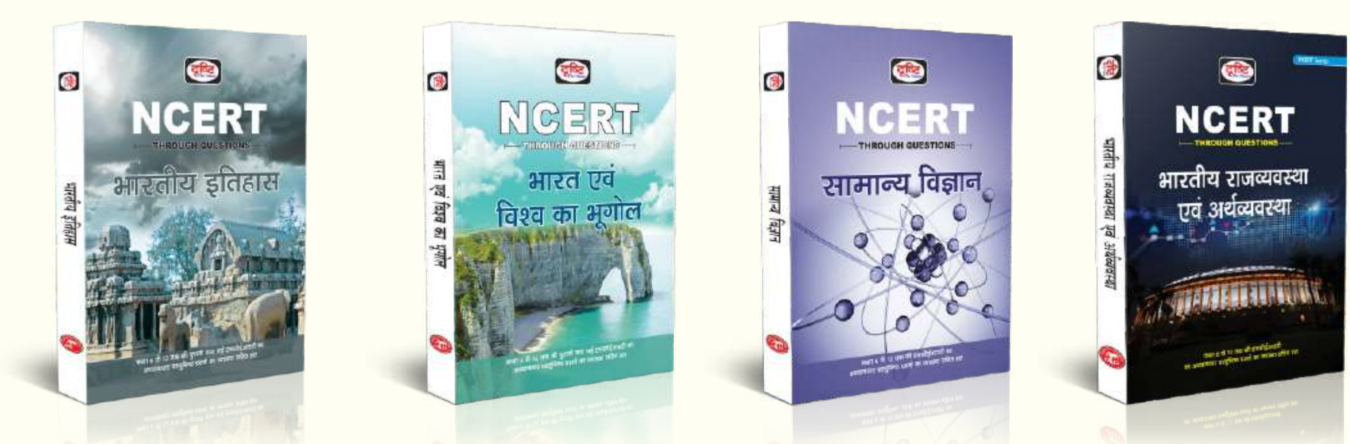

विस्तृत जानकारी के लिये कॉल करें 8448485516, 87501-87501, 011-47532596

भारतीय इतिहास
एवं
राष्ट्रीय आंदोलन

(तृतीय संस्करण)

दृष्टि पब्लिकेशन्स

641, प्रथम तल, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-110009
दूरभाष: 011-47532596, 87501 87501

Website:
www.drishtipublications.com, www.drishtiias.com
E-mail :
bookstеam@groupdrishti.com

तृतीय संस्करण- जनवरी 2020

मूल्य : ₹ 360

प्रकाशक

दृष्टि पब्लिकेशन्स,

(A Unit of VDK Publications Pvt. Ltd.)

641, प्रथम तल,

डॉ. मुखर्जी नगर,

दिल्ली-110009

विधिक घोषणाएँ

- इस पुस्तक में प्रकाशित सूचनाएँ, समाचार, ज्ञान एवं तथ्य पूरी तरह से सत्यापित किये गए हैं। फिर भी, यदि कोई जानकारी या तथ्य गलत प्रकाशित हो गया हो तो प्रकाशक, संपादक या मुद्रक उससे किसी व्यक्ति-विशेष या संस्था को पहुँची क्षति के लिये ज़िम्मेदार नहीं है।
- हम विश्वास करते हैं कि इस पुस्तक में छपी सामग्री लेखकों द्वारा मौलिक रूप से लिखी गई है। अगर कॉपीराइट उल्लंघन का कोई मामला सामने आता है तो प्रकाशक को ज़िम्मेदार नहीं ठहराया जाएगा।
- सभी विवादों का निपटारा दिल्ली न्यायिक क्षेत्र में होगा।
- © **कॉपीराइट :** दृष्टि पब्लिकेशन्स (A Unit of VDK Publications Pvt. Ltd.), सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन के किसी भी अंश का प्रकाशन अथवा उपयोग, प्रतिलिपीकरण, ऐसे यंत्र में भंडारण जिससे इसे पुनः प्राप्त किया जा सकता हो या स्थानान्तरण, किसी भी रूप में या किसी भी विधि से (इलेक्ट्रॉनिक, यांत्रिक, फोटो-प्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग या किसी अन्य प्रकार से) प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना नहीं किया जा सकता।

- एम.पी. प्रिंटर्स, बी-220, फेज़-2, नोएडा (उत्तर प्रदेश) से मुद्रित।

दो शब्द

प्रिय पाठको,

दृष्टि पब्लिकेशन्स की 'Quick Book' श्रृंखला की बहुप्रतीक्षित पुस्तकों में से एक 'भारतीय इतिहास एवं राष्ट्रीय आंदोलन' का तृतीय संस्करण आपको हस्तगत करते हुए हमें अपार हर्ष की अनुभूति हो रही है। गौरतलब है कि इसका प्रथम संस्करण अगस्त 2017 में प्रकाशित हुआ था जिसे पाठक वर्ग ने काफी सराहा और पुस्तक संबंधी अपना बहुमूल्य फीडबैक देकर कुछ त्रुटियों की तरफ हमारा ध्यान आकृष्ट किया। द्वितीय संस्करण में हमने पुस्तक को पूरी तरह त्रुटिरहित बनाने का ईमानदार प्रयास किया और हम इसमें पूर्णत: सफल भी रहें। 'भारतीय इतिहास एवं राष्ट्रीय आंदोलन' से संबंधित इस पुस्तक को संघ एवं राज्य लोक सेवा आयोगों सहित विभिन्न एकदिवसीय प्रतियोगी परीक्षाओं के निर्धारित पाठ्यक्रमों को ध्यान में रखकर लिखा गया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि इतिहास के तीन खंडों (प्राचीन भारत, मध्यकालीन भारत और आधुनिक भारत) में विभाजित इस पुस्तक में जिस तरह से एन.सी.ई.आर.टी., इग्नू, एन.आई.ओ.एस. की पुस्तकों सहित सरकारी वेबसाइटों के मूल तथ्यों और विश्लेषणों का समावेश किया गया है, वह न सिर्फ अभ्यर्थियों की सफलता में 'मील का पत्थर' साबित होगा, बल्कि जिज्ञासु पाठकों की ज्ञान-पिपासा को भी तृप्त करेगा।

विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं में पूछे जाने वाले सामान्य अध्ययन के प्रश्नपत्रों का विश्लेषण करने पर हमने यह पाया कि इतिहास के तीनों खंडों से ही सबसे अधिक प्रश्न पूछे जाते हैं। अत: यह कहने में संशय नहीं है कि सफलता के लिये 'इतिहास' विषय को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता। सच तो यह है कि इस विषय की सटीक तैयारी के बिना एकदिवसीय परीक्षाओं में सफलता प्राप्त करना लगभग असंभव है।

अब सवाल यह उठता है कि जब इतिहास से संबंधित पाठ्य-सामग्री की बाज़ार में कोई कमी नहीं है तो फिर एकदिवसीय परीक्षाओं में हिंदी माध्यम के परीक्षार्थियों की सफलता दर इतनी न्यून क्यों है? हमारी टीम द्वारा किये गए शोध में हमने यह पाया कि बाज़ार में इतिहास की जितनी भी पुस्तकें हैं, उनमें से अधिकतर परंपरागत पाठ्यक्रमों को ध्यान में रखकर लिखी गई हैं। साथ ही, कई पुस्तकों में दी गई जानकारियाँ भ्रामक भी हैं। कुछ मानक पुस्तकों में सही जानकारी है भी तो उनकी भाषा अत्यंत क्लिष्ट है। ऐसा भी देखने को मिलता है कि प्रचलित पुस्तकों में भाषागत अशुद्धियों की भरमार है जो हिंदी माध्यम के विद्यार्थियों की सफलता के रास्ते में एक गंभीर बाधा है। इन्हीं कारणों से परीक्षार्थियों में विषय की सही समझ विकसित नहीं हो पाती। नि:संदेह इस लिहाज़ से बाज़ार में बिक रही ये पुस्तकें परीक्षोपयोगी नहीं हैं।

उपर्युक्त समस्याओं के समाधान का संकल्प 'दृष्टि टीम' ने लिया। इतिहास जैसे विस्तृत विषय को लगभग 350 पृष्ठों में समेट पाना काफी मुश्किल था, लेकिन हमारी टीम ने इस चुनौती को स्वीकार किया और लगभग 8 महीनों के अथक परिश्रम से इस कार्य को सफलतापूर्वक अंजाम दिया। हम विश्वास के साथ कह सकते हैं कि इस पुस्तक में दी गई जानकारी अभ्यर्थियों के लिये 'गागर में सागर' के समान है। पुस्तक लिखने के दौरान हमारी टीम के सदस्यों के बीच कई तथ्यों को लेकर कुछ मानक पुस्तकों में दी गई भ्रामक जानकारी के कारण वैचारिक मतभेद भी रहे, लेकिन अंतत: भारत सरकार द्वारा प्रमाणित पुस्तकों को आधार बनाकर उन मतभेदों को विवेकपूर्वक सुलझा लिया गया। इतिहास से संबंधित घटनाओं व उनकी तिथियों को एक-दूसरे से अंतर्संबंधित करके इस तरह से लिखा गया है कि पुस्तक बोझिल न महसूस हो, बल्कि रुचिकर लगे। भाषा के स्तर पर विशेष रूप से सावधानियाँ बरती गई हैं कि त्रुटियाँ नगण्य हों। साथ ही, जितना ध्यान इस बात का रखा गया है कि विषय संबंधी किसी महत्त्वपूर्ण तथ्य से आप अनभिज्ञ न रह जाएँ, उससे कहीं ज़्यादा ध्यान इस बात का रखा गया है कि कोई अनुपयोगी जानकारी आपका समय व्यर्थ न करे। पुस्तक में संघ सहित विभिन्न राज्य लोक सेवा आयोगों में पूछे गए प्रश्नों का संकलन भी किया गया है ताकि आपको यह ज्ञात हो सके कि विभिन्न आयोगों में अध्याय संबंधी किस प्रकृति के प्रश्न पूछे जाते हैं, जिससे आपकी तैयारी के साथ सही मार्गदर्शन भी होता रहे व आप अपनी जानकारी का स्वमूल्यांकन भी कर सकें।

हमें अटूट विश्वास है कि पुस्तक का तृतीय संस्करण जो पूर्णत: संशोधित और अद्यतन है, आपकी तैयारी और सफलता में वरदान सिद्ध होगा। मेरा निवेदन है कि आप इस पुस्तक को पाठक के साथ आलोचक की निगाह से भी पढ़ें। अगर आपको इसमें कोई कमी दिखे **तो अपनी बात बेझिझक '8130392355' नंबर पर वाट्सएप मैसेज से भेज दें।** आपकी टिप्पणियों के आधार पर हम पुस्तक के आगामी संस्करणों को और बेहतर बना सकेंगे।

साभार,

प्रधान संपादक

दृष्टि पब्लिकेशन्स

अनुक्रम

खंड-1: प्राचीन भारत

1. प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत एवं प्रागैतिहासिक काल 1-10
2. सिंधु घाटी सभ्यता 11-16
3. वैदिक सभ्यता 17-24
4. छठी शताब्दी ईसा पूर्व का भारत 25-30
5. प्राचीन भारत पर विदेशी आक्रमण 31-33
6. प्राचीन भारत में धार्मिक आंदोलन 34-47
7. मौर्य साम्राज्य (322 ई.पू.-185 ई.पू.) 48-58
8. मौर्योत्तर काल 59-66
9. गुप्त साम्राज्य 67-77
10. गुप्तोत्तर काल/पूर्व मध्यकाल 78-88
11. संगम काल 89-94
12. प्राचीन भारत के विविध पहलू 95-100

खंड-2: मध्यकालीन भारत

13. मध्यकालीन भारतीय इतिहास के स्रोत 101-107
14. अरबों द्वारा सिंध की विजय 108-111
15. तुर्कों के आक्रमण से पूर्व भारतीय राजवंश 112-116
16. तुर्कों का आक्रमण 117-119
17. दिल्ली सल्तनत (1206-1526 ई.) 120-156
18. सूफी एवं भक्ति आंदोलन 157-164
19. मुगल काल 165-207
20. मराठा साम्राज्य 208-213
21. विविध 214-218

खंड-3: आधुनिक भारत

22. 18वीं शताब्दी में स्थापित नवीन स्वायत्त राज्य 219-225
23. भारत में यूरोपीयों का आगमन 226-230
24. अंग्रेज़ों की भारत विजय 231-240
25. भारत में ब्रिटिश शक्ति का विस्तार 241-245
26. भारत में ब्रिटिश शासकों की आर्थिक नीति एवं उसका प्रभाव 246-253
27. 1857 का विद्रोह 254-259
28. प्रमुख भारतीय विद्रोह 260-266
29. ब्रिटिश भारत में सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन 267-274
30. भारत में राजनीतिक चेतना का विकास 275-281
31. कॉन्ग्रेस की स्थापना से पूर्व राजनीतिक संस्थाएँ 282-284
32. राष्ट्रीय आंदोलन (1885-1947 ई.) 285-321
33. भारत के गवर्नर जनरल तथा वायसराय 322-330
34. भारत में संवैधानिक विकास 331-335
35. विविध 336-348

खंड–1

प्राचीन भारत

1 प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत एवं प्रागैतिहासिक काल
(The Sources of Ancient Indian History and Prehistoric Period)

भूमिका

इतिहास अतीत में किये गए मानव-प्रयास की आनुक्रमिक कथा है। इतिहास के आवश्यक अंग हैं- अतीत, सभ्य युग, मानव-प्रयास और घटनाओं का आनुक्रमिक प्रसार। 'वर्तमान' जो अभी जीवित है, इतिहास का विषय नहीं है। यद्यपि वह शीघ्र अतीत होकर उसका अंग हो जाएगा। घटना जो संपन्न हो चुकी- चाहे अभी, चाहे सहस्राब्दियों पूर्व, इतिहास का अंग हो जाती है। इतिहास विगत घटनाओं का चिंतन करता है। जब हम ऐतिहासिक क्रम में घटनाओं का वर्णन करते हैं तब उन्हें काल-प्रसार में वितरित करते हैं और जब भौगोलिक क्रम से इनका उल्लेख करते हैं तब उन्हें स्थानानुसार रखते हैं। इतिहास और भूगोल दोनों कारण और परिणाम के साथ घटनाओं की तिथि और स्थान को व्यवस्था प्रदान करते हैं। अत: निरन्तरता व परिवर्तनीयता का समसामयिक विश्लेषण ही इतिहास है। इतिहास हमारी और हमारे समाज की दशा व दिशा का निर्धारण करता है और भविष्य को सुरक्षित बनाने का प्रयास करता है।

प्राचीन भारत का इतिहास मानव सभ्यता के उस समय का इतिहास है, जब वह अपने निर्माण की अवस्था में था। विशाल पर्वतमालाओं और नदियों की भूमिका प्राचीन भारत के इतिहास के निर्माण में बहुत महत्त्वपूर्ण रही है। वर्तमान मानव का स्वरूप क्रमिक विकास का परिणाम है। इतिहासकारों ने अध्ययन हेतु सरलता की दृष्टि से इतिहास को कई भागों में वर्गीकृत किया है। प्राचीन भारत उसी वर्गीकरण का एक भाग है। ऐतिहासिक कालक्रमों का अध्ययन हम ऐतिहासिक सामग्री/स्रोतों के आधार पर करते हैं। चूँकि इतिहास उन बातों का वृत्तांत होता है, जो भूतकाल में हुई हों, इसलिये मूलत: महत्त्वपूर्ण तथ्यों को चुनकर अतीत का पुनर्निर्माण करने को ही इतिहास कहते हैं। ये महत्त्वपूर्ण तथ्य हमारे लिये कई रूपों में सुरक्षित हैं जिन्हें हम इतिहास की सामग्री/स्रोत कहते हैं।

प्राचीन भारतीय इतिहास जानने के स्रोत

प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत अनेक और विविध प्रकार के हैं। हमारे इतिहास के स्रोतों के क्षेत्र में किसी नदी के तट पर एक निर्जन टीले को खोदकर निकाले गए प्रागैतिहासिक काल के मनुष्य द्वारा पत्थर को काटकर बनाए गए गँडासों से लेकर भव्य इमारतों के भग्नावशेषों और राजकवि बाण के 'हर्षचरित' तक सभी प्रकार की चीजें शामिल हैं। अपने अध्ययन की सुविधा के उद्देश्य से हम उन्हें मोटे-मोटे रूप से दो श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं- एक तो साहित्यिक और दूसरा पुरातत्त्व संबंधी सामग्री। इन दो श्रेणियों को फिर और छोटी-छोटी श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है।

पुरातात्त्विक स्रोत

अभिलेख

- प्राचीन भारत के अधिकांश अभिलेख पाषाण शिलाओं, स्तंभों, ताम्रपत्रों, दीवारों तथा प्रतिमाओं पर उत्कीर्ण हैं।
- सबसे प्राचीन अभिलेखों में मध्य एशिया के बोगजकोई से प्राप्त अभिलेख हैं। इस पर वैदिक देवता-मित्र, वरुण, इंद्र और नासत्य के नाम मिलते हैं। इनसे ऋग्वेद की तिथि ज्ञात करने में मदद मिलती है।
- भारत में सबसे प्राचीन अभिलेख अशोक के हैं जो 300 ई. पू. के लगभग हैं। डी.आर. भंडारकर नामक विद्वान ने केवल अभिलेखों के आधार पर ही अशोक का इतिहास लिखने का सफल प्रयास किया है।
- अशोक के अभिलेख ब्राह्मी, खरोष्ठी, यूनानी तथा अरमाइक लिपियों में मिले हैं।
- मास्की, गुर्जरा, निट्टूर एवं उदेगोलम से प्राप्त अभिलेखों में अशोक के नाम का स्पष्ट उल्लेख है तथा अन्य अभिलेखों में उसे 'देवानांपिय पियदसि' (देवों का प्यारा) कहा गया है।
- सर्वप्रथम 1837 ई. में जेम्स प्रिंसेप ने ब्राह्मी लिपि में लिखित अशोक के अभिलेख को पढ़ा था।
- अशोक के बाद भी अभिलेखों की परम्परा कायम रही। अब हमें अनेक प्रशस्तियाँ मिलने लगीं जिनमें दरबारी कवियों अथवा लेखकों द्वारा अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा के शब्द मिलते हैं। इनसे संबंधित शासकों के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती हैं, जिनमें प्रमुख हैं-

अभिलेख	शासक	विषय
हाथीगुम्फा अभिलेख	खारवेल	खारवेल के शासन की घटनाओं का क्रमबद्ध विवरण
जूनागढ़ अभिलेख (गिरनार अभिलेख)	रुद्रदामन	इसमें रुद्रदामन की विजयों, व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विवरण प्राप्त होता है।
नासिक अभिलेख	गौतमी बलश्री (रचनाकार)	सातवाहनकालीन घटनाओं का विवरण (गौतमीपुत्र शातकर्णी से संबंधित)
प्रयाग स्तंभ लेख	समुद्रगुप्त	इसके विजय एवं नीतियों का पूरा विवरण
ऐहोल अभिलेख	पुलकेशिन द्वितीय	हर्ष एवं पुलकेशिन द्वितीय के युद्ध का विवरण
भीतरी स्तंभ लेख	स्कंदगुप्त	इसके जीवन की अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं का विवरण
मंदसौर अभिलेख	मालवा नरेश यशोधर्मन	सैनिक उपलब्धियों का वर्णन

2 सिंधु घाटी सभ्यता
(Indus Valley Civilization)

भूमिका

वर्षों पुरानी सिंधु घाटी सभ्यता बीसवीं सदी के द्वितीय दशक तक एक गुमनाम सभ्यता थी अर्थात् लोग इस सभ्यता के बारे में अपरिचित थे। विद्वानों की धारणा थी कि सिकंदर के आक्रमण (326 ई.पू.) के पूर्व भारत में कोई सभ्यता ही नहीं थी। बीसवीं सदी के तृतीय दशक में दो पुरातत्वशास्त्रियों-दयाराम साहनी तथा राखालदास बनर्जी ने हड़प्पा तथा मोहनजोदड़ो के प्राचीन स्थलों से पुरावस्तुएँ प्राप्त कर यह सिद्ध कर दिया कि सिकंदर के आक्रमण के पूर्व भी एक सभ्यता थी, जो अपने समकालीन सभ्यताओं में सबसे विकसित थी।

कालांतर में सर जॉन मार्शल, माधव स्वरूप वत्स, के.एन. दीक्षित, अर्नेस्ट मैके, ऑरैल स्टेइन, अमलानंद घोष, जे. पी. जोशी आदि विद्वानों ने उत्खनन करके महत्त्वपूर्ण सामग्रियाँ प्राप्त की। उत्खनन से प्राप्त अवशेषों के आधार पर इस पूरी सभ्यता को 'सिंधु घाटी सभ्यता', अथवा इसके मुख्य स्थल हड़प्पा के नाम पर 'हड़प्पा सभ्यता' कहा जाता है।

नामकरण

- सिंधु घाटी सभ्यता का क्षेत्र अत्यंत व्यापक था। आरंभ में हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की खुदाई से इस सभ्यता के प्रमाण मिले हैं अत: विद्वानों ने इसे सिंधु घाटी सभ्यता का नाम दिया, क्योंकि ये क्षेत्र सिंधु और उसकी सहायक नदियों के क्षेत्र में आते हैं, पर बाद में रोपड़, लोथल, कालीबंगा, बनावली, रंगपुर आदि क्षेत्रों में भी इस सभ्यता के अवशेष मिले जो सिंधु और उसकी सहायक नदियों के क्षेत्र से बाहर थे। अत: इतिहासकार, इस सभ्यता का प्रमुख केंद्र हड़प्पा होने के कारण इस सभ्यता को 'हड़प्पा की सभ्यता' नाम देना उचित मानते हैं।

सिंधु घाटी सभ्यता का भौगोलिक विस्तार

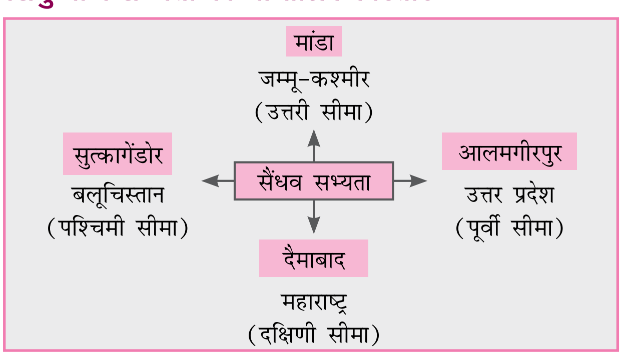

- सिंधु घाटी सभ्यता कांस्ययुगीन सभ्यता थी, जिसका उद्भव ताम्रपाषाण काल में भारत के पश्चिमी क्षेत्र में हुआ था और इसका विस्तार भारत के अलावा पाकिस्तान तथा अफगानिस्तान के कुछ क्षेत्रों में भी था।
- सैंधव सभ्यता का भौगोलिक विस्तार उत्तर में मांडा (जम्मू) से लेकर दक्षिण में नर्मदा नदी के मुहाने तक तथा पश्चिम में सुत्कागेंडोर से लेकर पूर्व में आलमगीरपुर (मेरठ) तक था।
- वह उत्तर से दक्षिण लगभग 1100 किमी. तक तथा पूर्व से पश्चिम लगभग 1600 किमी. तक फैली हुई थी। अभी तक उत्खनन तथा अनुसंधान द्वारा करीब 2800 स्थल ज्ञात किये गए हैं।
- सिंधु घाटी सभ्यता अपने त्रिभुजाकार स्वरूप में थी जिसका क्षेत्रफल लगभग 13 लाख वर्ग किमी. है।
- सर्वप्रथम चार्ल्स मैसन ने 1826 ई. में सैंधव सभ्यता का पता लगाया, जिसका सर्वप्रथम वर्णन उनके द्वारा 1842 में प्रकाशित पुस्तक में मिलता है। उसके बाद वर्ष 1921 में भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग के तत्कालीन अध्यक्ष सर जॉन मार्शल के नेतृत्व में पुरातत्त्वविद् दयाराम साहनी ने उत्खनन कर इसके प्रमुख नगर 'हड़प्पा' का पता लगाया। सर्वप्रथम हड़प्पा स्थल की खोज के कारण इसका नाम 'हड़प्पा सभ्यता' रखा गया।
- सर जॉन मार्शल के दिशानिर्देश में ही राखालदास बनर्जी द्वारा सिंधु घाटी सभ्यता के स्थल मोहनजोदड़ो की खोज 1922 में की गई।
- रेडियो कार्बन-14 (C^{14}) जैसी नवीन विश्लेषण पद्धति के द्वारा हड़प्पा सभ्यता का काल निर्धारण 2500 ई.पू. से 1750 ई.पू. माना गया है। यह सभ्यता 400-500 वर्षों तक विद्यमान रही तथा 2200 ई.पू. से 2000 ई.पू. के मध्य तक यह अपनी परिपक्व अवस्था में थी। नवीन शोध के अनुसार यह सभ्यता लगभग 8,000 साल पुरानी है।
- सिंधु घाटी सभ्यता के निर्माताओं के निर्धारण का महत्त्वपूर्ण स्रोत उत्खनन से प्राप्त मानव कंकाल है। सबसे अधिक कंकाल मोहनजोदड़ो से प्राप्त हुए हैं। इनके परीक्षण से यह निर्धारित हुआ है कि सिंधु सभ्यता में चार प्रजातियाँ निवास करती थीं- भूमध्यसागरीय, प्रोटो-ऑस्ट्रेलॉयड, अल्पाइन तथा मंगोलॉयड।
- सबसे ज्यादा भूमध्यसागरीय प्रजाति के लोग थे।

सिंधु घाटी सभ्यता की नगर योजना

- सिंधु घाटी सभ्यता एक नगरीय सभ्यता थी, जिसका ज्ञान इसके पुरातात्त्विक अवशेषों तथा अनुसंधानों से होता है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता थी- पर्यावरण के अनुकूल इसका अद्भुत नगर नियोजन तथा जल निकास प्रणाली।
- सड़कें एक-दूसरे को समकोण पर काटती थीं। लगभग सभी नगर दो भागों में विभक्त थे-
  - प्रथम भाग में ऊँचे दुर्ग निर्मित थे। इनमें शासक वर्ग निवास करता था।

- दूसरे भाग में नगर या आवास क्षेत्र के साक्ष्य मिले हैं, जो अपेक्षाकृत बड़े थे। आमतौर पर यहाँ सामान्य नागरिक, व्यापारी, शिल्पकार, कारीगर और श्रमिक रहते थे।
- सड़कों के किनारे की नालियाँ ऊपर से ढकी होती थीं। घरों का गंदा पानी इन्हीं नालियों से होता हुआ नगर की मुख्य नाली में गिरता था।
- हड़प्पा, मोहनजोदड़ो तथा कालीबंगा की नगर योजना लगभग एकसमान थी। कालीबंगा व रंगपुर को छोड़कर सभी में पकी हुई ईंटों का प्रयोग हुआ है।
- आमतौर पर प्रत्येक घर में एक आंगन, एक रसोईघर तथा एक स्नानागार होता था। अधिकांश घरों में कुओं के अवशेष भी मिले हैं।
- बड़े-बड़े भवन हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो की विशेषता बतलाते हैं। हड़प्पाकालीन नगरों के चारों ओर प्राचीर बनाकर किलेबंदी की गई थी, जिसका उद्देश्य नगर को चोर, लुटेरों एवं पशु दस्युओं से बचाना था।
- मोहनजोदड़ो का विशाल स्नानागार सैंधव सभ्यता का अद्भुत निर्माण है, जबकि अन्नागार सिंधु सभ्यता की सबसे बड़ी इमारत है।
- घरों के दरवाज़े एवं खिड़कियाँ मुख्य सड़क पर न खुलकर गलियों में खुलती थीं, लेकिन लोथल इसका अपवाद है। इसके दरवाज़े एवं खिड़कियाँ मुख्य सड़कों की ओर खुलती थीं। यद्यपि मकान बनाने में कई प्रकार की ईंटों का प्रयोग होता था, जिसमें 4 : 2 : 1 (लंबाई, चौड़ाई तथा मोटाई का अनुपात) के आकार की ईंटें ज़्यादा प्रचलित थी।

सिंधु घाटी सभ्यता के प्रमुख स्थल

सिंधु घाटी सभ्यता के कुछ प्रमुख स्थल निम्नलिखित हैं-

हड़प्पा

- सिंधु घाटी सभ्यता के अवशेषों की खोज सर्वप्रथम 1921 ई. में हड़प्पा में की गई। हड़प्पा वर्तमान में रावी नदी के बायें तट पर पाकिस्तान के पंजाब प्रांत के मोंटगोमरी ज़िले में स्थित है।
- स्टुअर्ट पिग्गट ने इसे 'अर्द्ध-औद्योगिक नगर' कहा है। यहाँ के निवासियों का एक बड़ा भाग व्यापार, तकनीकी उत्पाद और धर्म के कार्यों में संलग्न था। उन्होंने हड़प्पा व मोहनजोदड़ो को 'एक विस्तृत साम्राज्य की जुड़वाँ राजधानी' कहा था।
- नगर की रक्षा के लिये पश्चिम की ओर एक दुर्ग का निर्माण किया गया था। यह दुर्ग उत्तर से दक्षिण की ओर 415 मीटर लंबा तथा पूर्व से पश्चिम की ओर 195 मीटर चौड़ा है। जिस टीले पर यह दुर्ग बना है उसे व्हीलर ने 'माउंड ए-बी' (Mound A–B) की संज्ञा प्रदान की है।

मोहनजोदड़ो

- इसका सिंधी भाषा में अर्थ 'मृतकों का टीला' होता है। यह सिंध (पाकिस्तान) के लरकाना ज़िले में सिंधु नदी के तट पर स्थित है।
- सर्वप्रथम इसकी खोज राखालदास बनर्जी ने 1922 ई. में की थी। मोहनजोदड़ो की शासन व्यवस्था राजतंत्रात्मक न होकर जनतंत्रात्मक थी।
- वृहद् स्नानागार, मोहनजोदड़ो का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक स्थल है। इसके केंद्रीय खुले प्रांगण के बीच जलकुंड या जलाशय बना है।
- तांबे तथा टिन को मिलाकर हड़प्पावासी काँसे का निर्माण करते थे। मोहनजोदड़ो से काँसे की एक नर्तकी की मूर्ति पायी गई है, जो द्रवी मोम विधि (Lost wax method) से बनी है।

चन्हूदड़ो

- यह सैंधव नगर मोहनजोदड़ो से 130 किमी. दक्षिण-पूर्व सिंध प्रांत (पाकिस्तान) में स्थित है। इसकी सर्वप्रथम खोज 1934 ई. में एन.गोपाल मजूमदार ने की थी तथा 1935 ई. में अर्नेस्ट मैके द्वारा यहाँ उत्खनन करवाया गया।
- चन्हूदड़ो एकमात्र पुरास्थल है, जहाँ से वक्राकार ईंटें मिली हैं।
- चन्हूदड़ो में किसी दुर्ग का अस्तित्व नहीं मिला है। चन्हूदड़ो से पूर्वोत्तर हड़प्पाकालीन संस्कृति (झूकर-झाँगर) के अवशेष मिले हैं।
- ऐसा प्रतीत होता है कि यह एक औद्योगिक केंद्र था जहाँ मणिकारी, मुहर बनाने, भार-माप के बटखरे बनाने का काम होता था। अर्नेस्ट मैके ने यहाँ से मनका बनाने का कारखाना तथा भट्टी की खोज की है।

लोथल

- यह गुजरात के अहमदाबाद ज़िले के सरगवाला ग्राम के समीप दक्षिण में भोगवा नदी के तट पर स्थित है। इसकी खोज सर्वप्रथम डॉ. एस.आर. राव ने 1955 ई. में की थी।
- यह स्थल एक प्रमुख बंदरगाह था, जो पश्चिमी एशिया से व्यापार का प्रमुख स्थल था।
- लोथल में नगर को दो भागों में न बाँटकर एक ही रक्षा प्राचीर से पूरे नगर को दुर्गीकृत किया गया था।

राखीगढ़ी

- हरियाणा के हिसार ज़िले में स्थित प्रमुख पुरातात्विक स्थल।
- यहाँ से अन्नागार एवं रक्षा प्राचीर के साक्ष्य मिले हैं।
- मई 2012 में 'ग्लोबल हैरिटेज फंड' ने इसे एशिया के दस ऐसे 'विरासत-स्थलों' की सूची में शामिल किया है, जिनके नष्ट हो जाने का खतरा है।

कालीबंगा

- यह राजस्थान के गंगानगर ज़िले में घग्घर नदी के बायें तट पर है। कालीबंगा का शाब्दिक अर्थ 'काले रंग की चूड़ियाँ' हैं।
- इसकी खोज 1951 में अमलानंद घोष द्वारा की गई तथा 1961 ई. में बी.बी. लाल और बी.के. थापर के निर्देशन में व्यापक खुदाई की गई।
- यहाँ से जुते हुए खेत का साक्ष्य मिला है।
- यहाँ के भवनों का निर्माण कच्ची ईंटों द्वारा हुआ था; यहाँ से अलंकृत ईंटों के साक्ष्य भी मिले हैं।
- कालीबंगा में शवों के अंत्येष्टि संस्कार हेतु तीन विधियों- पूर्ण समाधीकरण, आंशिक समाधीकरण एवं दाह-संस्कार के प्रमाण मिले हैं।

बनावली

- हरियाणा के फतेहाबाद ज़िले में स्थित इस पुरास्थल की खोज 1973 ई. में आर.एस. बिष्ट ने की थी।

3 वैदिक सभ्यता
(Vedic Civilization)

भूमिका

सैंधव सभ्यता के पश्चात् भारत में जिस सभ्यता का प्रादुर्भाव हुआ उसे वैदिक अथवा आर्य सभ्यता के नाम से जाना जाता है। आर्य सभ्यता का ज्ञान वेदों से होता है, जिसमें ऋग्वेद सर्वप्राचीन होने के कारण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। सामान्यत: ऐसा माना गया है कि आर्यों ने ही सैंधव सभ्यता के नगरों को ध्वस्त कर एक नई सभ्यता की नींव रखी थी, लेकिन अभी भी इसके कोई ठोस साक्ष्य न होने के कारण इसे कल्पना ही माना जाता है।

वैदिक सभ्यता भारत की प्राचीन सभ्यता है जिसमें वेदों की रचना हुई। वैदिक शब्द 'वेद' से बना है, जिसका अर्थ होता है– 'ज्ञान'। वैदिक संस्कृति के निर्माता **आर्य** थे। वैदिक संस्कृति में आर्य शब्द का अर्थ– श्रेष्ठ, उत्तम, अभिजात, कुलीन तथा उत्कृष्ट होता है। सर्वप्रथम मैक्समूलर ने 1853 ई. में आर्य शब्द का प्रयोग एक श्रेष्ठ जाति के आशय से किया था। आर्यों की भाषा संस्कृत थी।

अध्ययन की सुविधा से वैदिक संस्कृति को दो भागों में बाँटा गया है–

(i) ऋग्वैदिक काल (1500–1000 ई. पू.)

(ii) उत्तर वैदिक काल (1000–600 ई. पू.)।

ऋग्वैदिक काल (1500–1000 ई.पू.)

- इस काल का तिथि निर्धारण जितना विवादास्पद रहा है, उतना ही इस काल के लोगों के बारे में सटीक जानकारी प्राप्त करना। **'ऋग्वेद संहिता'** की रचना इस काल में हुई थी। अत: यह इस काल की जानकारी का एकमात्र साहित्यिक स्रोत है।
- सिंधु सभ्यता के विपरीत वैदिक सभ्यता **मूलत: ग्रामीण** थी। आर्यों का आरंभिक जीवन पशु चारण पर आधारित था। कृषि उनके लिये गौण कार्य था।
- 1400 ई. पू. के बोगज़कोई (एशिया माइनर) के अभिलेख में ऋग्वैदिक काल के देवताओं– इंद्र, वरुण, मित्र तथा नासत्य का उल्लेख मिलता है। इससे अनुमान लगाया जाता है कि वैदिक आर्य ईरान से होकर भारत में आए होंगे।
- ऋग्वेद की अनेक बातें ईरानी भाषा के प्राचीनतम ग्रंथ **अवेस्ता** से मिलती हैं।
- आर्यों के मूल निवास के संदर्भ में विभिन्न विद्वानों के विचार अलग–अलग हैं–

विद्वान	आर्यों का मूल निवास स्थल
प्रो. मैक्समूलर	मध्य एशिया (बैक्ट्रिया)
बाल गंगाधर तिलक	उत्तरी ध्रुव
डॉ. अविनाश चंद्र दास	सप्त सैंधव प्रदेश
दयानंद सरस्वती	तिब्बत
नेहरिंग एवं प्रो. गार्डन चाइल्ड	दक्षिणी रूस
गंगानाथ झा	ब्रह्मर्षि देश
गाइल्स महोदय	हंगरी अथवा डेन्यूब नदी घाटी
प्रो. पेंका	जर्मनी के मैदानी भाग

नोट: अधिकांश विद्वान प्रो. मैक्समूलर के विचारों से सहमत हैं कि आर्य मूल रूप से मध्य एशिया के निवासी थे।

भौगोलिक विस्तार

- आर्यों की आरंभिक इतिहास की जानकारी का मुख्य स्रोत ऋग्वेद है।
- ऋग्वेद में आर्य–निवास स्थल के लिये सप्त सैंधव क्षेत्र का उल्लेख मिलता है, जिसका अर्थ है– **सात नदियों का क्षेत्र।** ये नदियाँ हैं– सिंधु, सरस्वती, शतुद्रि (सतलज), विपासा (व्यास), परुष्णी (रावी), वितस्ता (झेलम) और अस्किनी (चिनाब)।
- ऋग्वेद से प्राप्त जानकारी के अनुसार, आर्यों का विस्तार अफगानिस्तान, पंजाब तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश तक था। सतलज से यमुना तक का क्षेत्र 'ब्रह्मवर्त्त' कहलाता था। मनुस्मृति में सरस्वती और दृशद्वती नदियों के बीच के प्रदेश को 'ब्रह्मवर्त' पुकारा गया है। इसे ऋग्वैदिक सभ्यता का केंद्र माना जाता है।
- गंगा व यमुना के दोआब क्षेत्र एवं उसके सीमावर्ती क्षेत्रों पर भी आर्यों ने कब्ज़ा कर लिया, जिसे 'ब्रह्मर्षि देश' कहा गया। कालांतर में संपूर्ण उत्तर भारत में आर्यों ने विस्तार कर लिया जिसे 'आर्यावर्त' कहा जाता है।
- वैदिक संहिताओं में 31 नदियों का उल्लेख मिलता है जिसमें से ऋग्वेद में 25 नदियों का उल्लेख किया गया है। किंतु, ध्यान देने योग्य है कि ऋग्वेद के नदी सूक्त में केवल 21 नदियों का वर्णन किया गया है। इस काल की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नदी **सिंधु** को बताया गया है, जबकि सर्वाधिक पवित्र नदी सरस्वती को माना गया है, जिसे 'देवीतमा', 'मातेतमा' एवं 'नदीतमा' भी कहा गया है। ऋग्वेद में गंगा नदी का एक बार, जबकि यमुना नदी का तीन बार नाम लिया गया है।

4 छठी शताब्दी ईसा पूर्व का भारत
(India in the 6th Century BC)

महाजनपदों का उदय

आर्य जातियों के परस्पर विलीनीकरण से जनपदों का विस्तार हुआ और महाजनपद बने। महाजनपदों ने अब ईसा पूर्व छठी सदी में राज्य विस्तार किया। इसके साथ ही कला-कौशल की अभूतपूर्व अभिवृद्धि, धन-धान्य की समृद्धि, व्यापार-वाणिज्य का चमत्कारपूर्ण उत्कर्ष सामने आया। यही कारण है कि भारत के राजनैतिक इतिहास का प्रारम्भ छठी शताब्दी ई. पू. से माना जाता है। छठी शताब्दी के आसपास पूर्वी उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बिहार में लोहे के व्यापक प्रयोग के कारण अतिरिक्त उपज होने लगी तथा आर्थिक परिवर्तन हुए, जिसके कारण व्यापार एवं वाणिज्य को बल मिला। लोहे के हथियारों के प्रयोग से क्षत्रिय वर्ग की शक्ति में अपार वृद्धि हुई। इन परिवर्तनों के कारण ऋग्वैदिक कबीलाई जनजीवन में दरार पड़ने लगी और क्षेत्रीय भावना के जाग्रत होने से नगरों का निर्माण होने लगा। परिणामतः उत्तर वैदिक काल के जनपद, महाजनपदों में परिवर्तित हो गए।

महाजनपदों की कुल संख्या 16 थी, जिसका उल्लेख बौद्ध ग्रंथ 'अंगुत्तर निकाय', 'महावस्तु' एवं जैन ग्रंथ 'भगवती सूत्र' में मिलता है। इसमें मगध, कौशल, वत्स और अवंति सर्वाधिक शक्तिशाली थे। सोलह महाजनपदों में अश्मक ही एक ऐसा जनपद था जो दक्षिण भारत में गोदावरी नदी के किनारे स्थित था। इन 16 महाजनपदों में वज्जि एवं मल्ल में गणतंत्रात्मक व्यवस्था थी, जबकि शेष में राजतंत्रात्मक व्यवस्था थी। महापरिनिर्वाणसुत्त में 6 महानगरों की सूचना मिलती है- चंपा, राजगृह, श्रावस्ती, काशी, कौशांबी तथा साकेत। इस काल में मगध ने अन्य महाजनपदों को जीतकर मगध साम्राज्य का निर्माण किया।

महाजनपद	राजधानी
काशी	वाराणसी
कोशल	श्रावस्ती/अयोध्या (फैज़ाबाद मंडल)
अंग	चंपा (भागलपुर एवं मुंगेर)
मगध	राजगृह/गिरिब्रज (दक्षिणी बिहार)
वज्जि	वैशाली (उत्तरी बिहार)
मल्ल	कुशीनगर (प्रथम भाग) एवं पावा (द्वितीय भाग) (पूर्वी उत्तर प्रदेश का गोरखपुर-देवरिया क्षेत्र)
चेदि/चेति	सोत्थिवती / सुक्तिमति (आधुनिक बुंदेलखंड)
वत्स	कौशांबी (इलाहाबाद एवं बांदा)
पांचाल	उत्तरी पांचाल-अहिच्छत्र (रामनगर, बरेली) एवं दक्षिणी पांचाल-काम्पिल्य (फरुर्खाबाद)
मत्स्य	विराट नगर [अलवर, भरतपुर (राजस्थान)]
शूरसेन	मथुरा (आधुनिक ब्रजमंडल)
अश्मक	पोतना या पोटली (दक्षिण भारत का एकमात्र महाजनपद)
अवंति	उत्तरी उज्जयिनी, दक्षिणी महिष्मती
गांधार	तक्षशिला [पेशावर तथा रावलपिंडी (पाकिस्तान)]
कंबोज	राजपुर/हाटक (कश्मीर)
कुरु	इंद्रप्रस्थ (मेरठ तथा दक्षिण-पूर्व हरियाणा)

- वैशाली का लिच्छवी गणराज्य विश्व का प्रथम गणतंत्र माना जाता है जो वज्जि संघ की राजधानी थी। इसका गठन 500 ई.पू. में हुआ था।
- 4 शक्तिशाली महाजनपद थे- मगध, कोशल, वत्स तथा अवंति।

नोट: नालंदा विश्वविद्यालय विश्व के प्राचीनतम विश्वविद्यालयों में से एक है। इसकी स्थापना गुप्त वंश के शासक कुमारगुप्त प्रथम ने की थी।
- विश्व का सबसे प्राचीन वैभवशाली महानगर पाटलिपुत्र (221 ई.पू.) है।

'अंगुत्तर निकाय' में जिन 16 महाजनपदों का उल्लेख हुआ, उनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है-

काशी

काशी महाजनपद की राजधानी वाराणसी थी। 'सोननंद जातक' से ज्ञात होता है कि मगध, कोशल तथा अंग के ऊपर काशी का अधिकार था। काशी का सबसे शक्तिशाली राजा ब्रह्मदत्त था जिसने कोशल के ऊपर विजय प्राप्त की थी।

कोशल

कोशल महाजनपद की राजधानी श्रावस्ती थी। रामायणकालीन कोशल राज्य की राजधानी अयोध्या थी। यह राज्य उत्तर में नेपाल से लेकर दक्षिण में सई नदी तक तथा पश्चिम में पांचाल से लेकर पूर्व में गंडक नदी तक फैला हुआ था।

अंग

अंग राज्य की राजधानी चंपा थी। बुद्ध के समय तक चंपा की गणना भारत के छः महानगरों में की जाती थी। 'महापरिनिर्वाणसुत्त' में चंपा के अतिरिक्त अन्य पाँच महानगरों के नाम—राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी तथा बनारस दिये गए हैं। प्राचीन काल में चंपा नगरी वैभव तथा व्यापार-वाणिज्य के लिये प्रसिद्ध थी।

मगध

मगध की प्राचीन राजधानी राजगृह या गिरिब्रज थी। कालांतर में मगध की राजधानी पाटलिपुत्र स्थानांतरित हुई। यह उत्तर भारत का सर्वाधिक शक्तिशाली महाजनपद था।

5 प्राचीन भारत पर विदेशी आक्रमण
(Foreign Invasions on Ancient India)

प्राचीन भारत पर विदेशी आक्रमण

- हखामनी ईरानी आक्रमण
- यूनानी आक्रमण

- प्राक्-मौर्य युग में मगध सम्राटों का अधिकार क्षेत्र भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश तक विस्तृत नहीं हो पाया था। जिस समय मध्य भारत के राज्य, मगध साम्राज्य की विस्तारवादी नीति का शिकार हो रहे थे, पश्चिमोत्तर प्रांतों में अराजकता एवं अव्यवस्था का वातावरण व्याप्त था।
- यह क्षेत्र अनेक छोटे-बड़े राज्यों में विभक्त था जिसमें कंबोज, गांधार एवं मद्र प्रमुख थे।
- इन क्षेत्रों में कोई ऐसी सार्वभौम शक्ति नहीं थी जो परस्पर संघर्षरत राज्यों को जीतकर एकछत्र शासन कर सके। यह संपूर्ण प्रदेश उस समय विभाजित थे, ऐसी स्थिति में विदेशी आक्रांताओं का ध्यान भारत के इस भू-भाग की ओर आकर्षित होना स्वाभाविक ही था। परिणामस्वरूप यह प्रदेश दो विदेशी आक्रमणों का शिकार हुआ। हखामनी ईरानी आक्रमण एवं यूनानी आक्रमण।
- भारत में सर्वप्रथम विदेशी आक्रमण हखामनी वंश के राजाओं ने किया।
- इस वंश के संस्थापक साइरस द्वितीय (558 ई.पू. से 529 ई.पू.) ने भारत पर आक्रमण का असफल प्रयास किया था।

हखामनी (ईरानी) साम्राज्य के प्रमुख शासक

साइरस द्वितीय (558 ई.पू. से 529 ई.पू.)

- साइरस द्वितीय ने छठी शताब्दी ई.पू. के मध्य ईरान में हखामनी साम्राज्य की स्थापना की।
- साइरस द्वितीय एक महात्वाकांक्षी शासक था। अत: थोड़े ही समय में वह पश्चिमी एशिया का सर्वाधिक शक्तिशाली शासक बन गया।
- साइरस ने सिंध के पश्चिम में भारत के सीमावर्ती क्षेत्र की विजय की। प्लिनी के विवरण से ज्ञात होता है कि साइरस ने कपिशा नगर को ध्वस्त किया।
- साइरस की मृत्यु कैस्पियन क्षेत्र में डरबाइक नामक एक पूर्वी जनजाति के विरुद्ध लड़ते हुए हुई तथा उसका पुत्र केम्बिसीज द्वितीय (529 ई. पू. से 522 ई. पू.) उसके साम्राज्य का उत्तराधिकारी हुआ। वह गृह युद्धों में ही उलझा रहा और उसके समय में हखामनी साम्राज्य का भारत की ओर कोई विस्तार न हो सका।

दारा प्रथम (डेरियस प्रथम) (522 ई.पू. से 486 ई.पू.)

- भारत पर आक्रमण करने में प्रथम सफलता दारा प्रथम (डेरियस प्रथम) को प्राप्त हुई।
- दारा के यूनानी सेनापति स्काईलैक्स (Scylax) ने सिंधु से भारतीय समुद्र में उतरकर अरब और मकरान तटों का पता लगाया।
- दारा प्रथम ने 516 ई. पू. में सर्वप्रथम गांधार को जीतकर फारसी साम्राज्य में मिलाया था।
- भारत का पश्चिमोत्तर भाग दारा के साम्राज्य का 20वाँ प्रांत (हेरोडोटस के अनुसार) था। कंबोज एवं गांधार पर भी उसका अधिकार था।
- दारा प्रथम के तीन अभिलेखों-बेहिस्तून, पर्सिपोलिस एवं नक्शेरुस्तम से यह पता चलता है कि उसी ने सर्वप्रथम सिंधु नदी के तटवर्ती भारतीय भू-भागों को अधिकृत किया।

क्षयार्ष अथवा ज़रक्सीज (लगभग 486 ई. पू. से 465 ई. पू.)

- यह दारा का पुत्र था तथा इसने अपने पिता के साम्राज्य को सुरक्षित रखा, किंतु यह यूनानियों द्वारा परास्त किया गया था।
- इसने अपनी फौज में भारतीयों को शामिल किया।

ज़रक्सीज के उत्तराधिकारी तथा पारसीक साम्राज्य का विनाश

- ज़रक्सीज की मृत्यु के पश्चात् उसके तात्कालिक उत्तराधिकारी क्रमश: अर्तज़रक्सीज प्रथम एवं अर्तज़रक्सीज द्वितीय हुए। साक्ष्यों से पता चलता है इन उत्तराधिकारियों द्वारा दारा प्रथम द्वारा निर्मित साम्राज्य को सुरक्षित रखा गया।
- पारसीकों का अंतिम सम्राट दारा तृतीय (360 ई.पू. से 330 ई.पू.) था।
- दारा तृतीय को यूनानी सिकंदर ने अरबेला/गौगामेला के युद्ध (331 ई.पू.) में बुरी तरह परास्त किया। इस प्रकार पारसीकों का विनाश हुआ।

6 प्राचीन भारत में धार्मिक आंदोलन
(Religious Movement in Ancient India)

भूमिका

देश और काल के अंदर जब मानव जीवन अपने प्रारंभिक दौर से आगे बढ़ने लगा तब उसके मन में बहुत सारे सवाल उठने लगे, जैसे–इस दुनिया को बनाया किसने? हम जन्म क्यों लेते हैं? जन्म लेने के बाद मरते क्यों हैं? हमारी आपसी परेशानियों का कारण क्या है? ऐसे बहुत सारे सवालों के जवाब में ईसा पूर्व छठी सदी के उत्तरार्द्ध में मध्य गंगा के मैदानों में अनेक धार्मिक संप्रदायों का उदय हुआ। धर्मों का जन्म चूँकि मानवीय जीवन के मूलभूत सवालों के जवाब में हुआ इसलिये इन धर्मों की दार्शनिक व्याख्याओं, नियम, कानून, आचार-विचार ने सामाजिक आंदोलनों की तरह काम किया। इन्होंने मानवीय जीवनशैली को बदलने में समय-समय पर महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। उदाहरणस्वरूप–वैदिक धर्म के कारण समाज में वर्णव्यवस्था और कर्मकांडों ने जगह बनाई तो बौद्ध व जैन धर्म के उपदेशों, आचार-विचारों ने समाज में फैले भौतिकवादी रवैये को मानवीय परेशानियों का कारण बताया।

नवीन धर्मों की उत्पत्ति के कारण

छठी शताब्दी ई.पू. में भारत में नवीन धर्मों के उदय में निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण कारणों ने योगदान दिया–

- **वैदिक धर्म की जटिलता/यज्ञों की परम्परा:** ऋग्वैदिककालीन वैदिक धर्म अत्यधिक सरल एवं विशुद्ध था। स्तुति-पाठ तथा यज्ञ सामूहिक किये जाते थे, किंतु उत्तर वैदिक काल में धर्म में अनेक जटिलताओं का समावेश हो गया। धर्म पर एक वर्ग-विशेष का प्रभुत्व स्थापित हो गया तथा धर्म का स्थान जटिल एवं निरर्थक कर्मकांडों ने ले लिया।
- **जाति प्रथा की जटिलता:** ऋग्वैदिक काल में आर्यों ने व्यवसाय के आधार पर वर्ण व्यवस्था की स्थापना की ताकि समाज का संचालन सुचारू रूप से किया जा सके, किंतु उत्तर वैदिक काल में वर्णव्यवस्था जन्म पर आधारित जाति व्यवस्था में बदल गई। छठी शताब्दी ई.पू. तक इस प्रथा ने कठोर रूप धारण कर लिया।
- **वैदिक ग्रंथों की कठिन भाषा:** संपूर्ण वैदिक साहित्य की रचना कठिन संस्कृत भाषा में की गई थी क्योंकि इसे पवित्र भाषा समझा जाता था। अतः छठी शताब्दी ई.पू. के काल तक यह भाषा जनसामान्य की भाषा के स्थान पर केवल विद्वानों की भाषा बन गई, जिसने समाज में धार्मिक कर्मकांडों को बढ़ावा दिया।
- **नवीन कृषिमूलक अर्थव्यवस्था का विस्तार:** लगभग 600 ई.पू. के समय लोहे का प्रयोग होने लगा तथा लोहे के औजारों से जंगलों को काटकर कृषियोग्य भूमि का विस्तार किया गया, साथ ही कृषिगत् क्रियाओं को सम्पन्न करने के लिये पशुधन (बैलों) की मांग बढ़ने लगी। परिणामतः वैदिककालीन धार्मिक कर्मकांडों में दी जाने वाली पशुबलि के विरुद्ध आवाज उठाई गई।
- **वैश्य वर्ग के महत्त्व में वृद्धि:** लोहे के उपकरणों के प्रयोग से कृषि भूमि का विस्तार हुआ जिससे कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई अतः उत्पादन में वृद्धि होने के कारण व्यापार-वाणिज्य को प्रोत्साहन मिला जिससे समाज में वैश्य वर्ग का महत्त्व बढ़ने लगा। अतः वैश्य वर्ग ने समाज में अपनी स्थिति सुधारने एवं व्यापार-वाणिज्य का विस्तार करने के लिये ब्राह्मणवादी सामाजिक व्यवस्था का विरोध किया। ऐसा इसलिये क्योंकि वैदिककालीन व्यवस्था ऋण पर ब्याज लेना पाप मानती थी, अतः वैश्य वर्ग ने नवीन धर्मों के उदय को प्रोत्साहित किया।
- **अनुकूल राजनीतिक दशा:** छठी शताब्दी ई.पू. की अनुकूल राजनीतिक स्थिति ने नवीन धर्मों के उदय में पर्याप्त योगदान दिया। भारत में मगध सर्वाधिक शक्तिशाली राज्य था तथा इसके शासक बिम्बिसार और अजातशत्रु ब्राह्मणों के प्रभाव से मुक्त थे अतः उन्होंने नवीन धर्मों को संरक्षण प्रदान किया।

प्रमुख धार्मिक आंदोलन

जैन धर्म

- जैन शब्द संस्कृत के 'जिन' शब्द से बना है, जिसका अर्थ विजेता होता है अर्थात् जिन्होंने अपने मन, वाणी एवं काया को जीत लिया हो।
- जैन अनुश्रुतियों और परंपराओं के अनुसार जैन धर्म में 24 तीर्थंकर हुए, परंतु इनमें से पहले 22 तीर्थंकरों की ऐतिहासिकता संदिग्ध है।
- जैन धर्म की स्थापना का श्रेय जैनियों के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव या आदिनाथ को जाता है, जिन्होंने छठी शताब्दी ई.पू. जैन आंदोलन का प्रवर्तन किया। ऋषभदेव (प्रथम तीर्थंकर) व अरिष्टनेमि (22वें तीर्थंकर) का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है।
- जैनधर्म के 23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ थे, जो काशी के इक्ष्वाकु वंशीय राजा अश्वसेन के पुत्र थे। इनका काल महावीर से 250 ई.पू. माना जाता है। इनके अनुयायियों को **'निर्ग्रंथ'** कहा जाता था।
- पार्श्वनाथ द्वारा प्रतिपादित चार महाव्रत इस प्रकार हैं– सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह (धन संचय का त्याग) तथा अस्तेय (चोरी न करना)।
- पार्श्वनाथ ने नारियों को भी अपने धर्म में प्रवेश दिया क्योंकि जैन ग्रंथ में स्त्री संघ की अध्यक्षा 'पुष्पचूला' का उल्लेख मिलता है।
- पार्श्वनाथ को झारखंड के गिरिडीह ज़िले में 'सम्मेद पर्वत' पर निर्वाण प्राप्त हुआ।
- जैन धर्म के वास्तविक संस्थापक 24वें एवं अंतिम तीर्थंकर महावीर स्वामी थे।

7 मौर्य साम्राज्य (322 ई.पू.–185 ई.पू.)
[The Maurya Empire (322 BC-185 BC)]

मौर्य साम्राज्य (322 ई.पू.– 185 ई.पू.)

↓

मौर्य वंश से संबंधित जानकारी विभिन्न स्रोतों से मिलती है

साहित्यिक साक्ष्य	*विदेशी विवरण*	*पुरातात्त्विक साक्ष्य*
■ अर्थशास्त्र	■ मेगस्थनीज	■ अशोक के अभिलेख
■ पुराण	■ स्ट्रैबो	■ जूनागढ़ (गिरनार) अभिलेख
■ मुद्राराक्षस नाटक	■ कर्टियस आदि।	■ काली पॉलिश वाले मृद्भांड
■ बौद्ध एवं जैन ग्रंथ आदि		■ भवन : स्तूप एवं गुफ़ा
		■ मुद्रा : आहत मुद्रा (पंचमार्क)

साहित्यिक साक्ष्य

- ब्राह्मण, बौद्ध तथा जैन साहित्य मौर्य वंश के इतिहास पर प्रकाश डालते हैं।
- ब्राह्मण साहित्य में पुराण, कौटिल्य द्वारा रचित **अर्थशास्त्र**, विशाखदत्त का **मुद्राराक्षस**, सोमदेव कृत **कथासरित्सागर**, क्षेमेन्द्र कृत **बृहत्कथामंजरी** तथा पतंजलि के **महाभाष्य** आदि से जानकारी मिलती है।
- बौद्धग्रंथों में दीपवंश, महावंश, महावंश टीका, महाबोधिवंश, दिव्यावदान आदि प्रमुख हैं। इनसे चंद्रगुप्त मौर्य, बिंदुसार, अशोक तथा परवर्ती मौर्य शासकों के विषय में जानकारी प्राप्त होती है।
- जैन ग्रंथों में प्रमुख स्रोत ग्रंथ हैं– भद्रबाहु का **कल्पसूत्र** एवं हेमचंद्र का **परिशिष्टपर्वन**।

नोटः इनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण 'अर्थशास्त्र' है, जो मौर्य प्रशासन के अतिरिक्त चंद्रगुप्त मौर्य के जीवन पर भी प्रकाश डालता है।

विदेशी विवरण

- विदेशी लेखकों में स्ट्रैबो, कर्टियस, डियोडोरस, प्लिनी, एरियन, जस्टिन, प्लूटार्क, नियार्कस, ऑनेसिक्रिटस व अरिस्टोब्यूलस आदि हैं जिन्होंने मौर्य वंश के बारे में लिखा है।

इण्डिका-मेगस्थनीज

मेगस्थनीज की 'इण्डिका' मौर्य इतिहास की जानकारी उपलब्ध कराने का प्रमुख स्रोत है। परंतु यह अपने मूलरूप में प्राप्त नहीं हुई है, बल्कि इसके कुछ भाग परवर्ती लेखकों के ग्रंथों से प्राप्त होते हैं। इनमें स्ट्रैबो, प्लिनी, एरियन, प्लूटार्क तथा जस्टिन के नाम उल्लेखनीय हैं।

- जस्टिन आदि यूनानी विद्वानों ने चंद्रगुप्त मौर्य को 'सैंड्रोकोट्टस' कहा है।
- सर्वप्रथम विलियम जोन्स ने ही 'सेंड्रोकोट्टस' की पहचान चंद्रगुप्त मौर्य से की है।
- मेगस्थनीज यूनानी शासक सेल्यूकस निकेटर का राजदूत था, जो चंद्रगुप्त मौर्य के दरबार में आया। इसने 'इण्डिका' में पाटलिपुत्र का विस्तार से वर्णन किया।

पुरातात्त्विक साक्ष्य

- इस काल के पुरातात्त्विक साक्ष्यों में अशोक के अभिलेख अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इनसे अशोक के शासनकाल की समस्त जानकारी मिलती है।
- अशोक के 40 से अधिक अभिलेख भारत, पाकिस्तान तथा अफगानिस्तान के विभिन्न भागों से प्राप्त हुए हैं।
- अशोक के अभिलेखों के अतिरिक्त शक महाक्षत्रप रुद्रदामन का जूनागढ़ (गिरनार) अभिलेख भी मौर्य इतिहास के विषय में जानकारी प्रदान करता है।
- मौर्यकालीन इतिहास की जानकारी काली पॉलिश वाले मृद्भांड तथा चांदी व तांबे के 'पंचमार्क' (आहत सिक्के) से भी मिलती है।

मौर्य साम्राज्य की स्थापना

- चौथी शताब्दी ई. पू. मगध में नंद वंश के शासक धनानंद का शासन था। साक्ष्यों से पता चलता है कि धनानंद एक क्रूर और अत्याचारी शासक था।
- मौर्य वंश के संस्थापक चंद्रगुप्त मौर्य ने अपने राजनीतिक गुरु चाणक्य के साथ मिलकर इसी नंद वंशीय शासक धनानंद को पराजित कर मगध में मौर्य वंश की स्थापना की। इसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी।
- चंद्रगुप्त मौर्य, मौर्य वंश का प्रथम राजा और संस्थापक था। उसकी माता का नाम मूर था जिसका संस्कृत में अर्थ मौर्य होता है, इसलिये इस वंश का नाम मौर्य वंश पड़ा।
- मौर्य वंश के शासक किस 'वर्ण' के थे, इसको लेकर इतिहासकारों में मतभेद है। लेकिन बौद्ध एवं जैन ग्रंथों में उसे (चंद्रगुप्त) 'मोरिय क्षत्रिय' कहा गया है। ऐसा इसलिये भी प्रामाणिक लगता है क्योंकि चंद्रगुप्त का गुरु चाणक्य वर्णाश्रम धर्म का प्रबल पोषक था जिसके अनुसार क्षत्रिय वर्ण का व्यक्ति ही राजत्व का अधिकारी हो सकता था।

मौर्य वंश के प्रमुख शासक

चंद्रगुप्त मौर्य (322 ई.पू.–298 ई.पू.)

- चंद्रगुप्त मौर्य चाणक्य की सहायता से अंतिम नंद वंशीय शासक धनानंद को पराजित कर 322 ई. पू. में मगध की गद्दी पर बैठा।

8 मौर्योत्तर काल
(Post-Mauryan Period)

मौर्योत्तर काल

देशी शासक
- शुंग वंश
- कण्व वंश
- सातवाहन वंश
- चेदि वंश/महामेघवाहन वंश

विदेशी शासक
- इंडो-ग्रीक
- शक
- पार्थियन
- कुषाण वंश

शुंग वंश

- **संस्थापक** - पुष्यमित्र शुंग
- पुष्यमित्र शुंग ने 185 ई. पू. में मौर्य शासक बृहद्रथ की हत्या करके 'शुंग वंश' की स्थापना की।
- बाणभट्ट ने 'हर्षचरित' में पुष्यमित्र को 'अनार्य' कहा है। पुष्यमित्र कट्टर ब्राह्मणवादी था।

शुंग वंश के इतिहास के बारे में जानकारी साहित्यिक एवं पुरातात्त्विक दोनों साक्ष्यों से प्राप्त होती है-

साहित्यिक स्रोत

- **पुराण (वायु और मत्स्य पुराण):** इससे पता चलता है कि शुंग वंश का संस्थापक पुष्यमित्र शुंग था।
- **हर्षचरित:** इसकी रचना बाणभट्ट ने की थी। इसमें अंतिम मौर्य शासक बृहद्रथ की चर्चा है। इससे पता चलता है कि पुष्यमित्र ने अंतिम मौर्य नरेश बृहदृथ की हत्या कर सिंहासन पर अधिकार कर लिया।
- **पतंजलि का महाभाष्य:** पतंजलि पुष्यमित्र के पुरोहित थे। इस ग्रंथ में यवनों के आक्रमण की चर्चा है।
- **गार्गी संहिता:** इसमें भी यवन आक्रमण का उल्लेख है। यह एक ज्योतिष ग्रंथ है।
- **मालविकाग्निमित्रम्:** यह कालिदास का नाटक है, जिससे शुंगकालीन राजनीतिक गतिविधियों का ज्ञान प्राप्त होता है।
- **दिव्यावदान:** इसमें पुष्यमित्र शुंग को अशोक के 84,000 स्तूपों को तोड़ने वाला बताया गया है।

पुरातात्त्विक स्रोत

- **अयोध्या अभिलेख:** इस अभिलेख को पुष्यमित्र शुंग के उत्तराधिकारी धनदेव ने लिखवाया था। इसमें पुष्यमित्र शुंग द्वारा कराए गए दो अश्वमेध यज्ञ की चर्चा है।
- **बेसनगर का अभिलेख:** यह यवन राजदूत हेलियोडोरस का है जो गरुड़ स्तंभ के ऊपर खुदा है। इससे भागवत धर्म की लोकप्रियता का पता चलता है।
- **भरहुत का लेख:** इससे भी शुंग काल के बारे में जानकारी प्राप्त होती है।

- उपर्युक्त साक्ष्यों के अतिरिक्त साँची, बेसनगर, बोधगया आदि स्थानों से प्राप्त स्तूप एवं स्मारक शुंगकालीन कला एवं स्थापत्य की विशिष्टता का ज्ञान कराते हैं। शुंग काल की कुछ मुद्राएँ कौशांबी, अहिच्छत्र, अयोध्या तथा मथुरा से प्राप्त हुई हैं, जिनसे तत्कालीन ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त होती है।

पुष्यमित्र शुंग

- पुष्यमित्र मौर्य वंश के अंतिम शासक बृहद्रथ का सेनापति था।
- 'दिव्यावदान' से पता चलता है कि वह पुष्यधर्म का पुत्र था।
- धनदेव के अयोध्या अभिलेख के अनुसार, पुष्यमित्र ने दो अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान किया। पतंजलि उसके अश्वमेध यज्ञ के पुरोहित थे। **पतंजलि पुष्यमित्र के राजपुरोहित थे।**
- बौद्ध ग्रंथों के अनुसार पुष्यमित्र बौद्ध धर्म का उत्पीड़क था। पुष्यमित्र ने बौद्ध विहारों को नष्ट किया तथा बौद्ध भिक्षुओं की हत्या की थी।
- संभवत: पुष्यमित्र बौद्ध विरोधी था, लेकिन भरहुत स्तूप बनाने का श्रेय पुष्यमित्र शुंग को ही दिया जाता है।

विजय अभियान

- पुष्यमित्र के शासनकाल में कई विदेशी आक्रमणकारियों के द्वारा भारत पर आक्रमण किये गए।
- पुष्यमित्र के राजा बन जाने पर मगध साम्राज्य को बहुत बल मिला था। जो राज्य मगध की अधीनता त्याग चुके थे, पुष्यमित्र ने उन्हें फिर से अपने अधीन कर लिया था।
- पुष्यमित्र ने अपने विजय अभियानों से सीमा का विस्तार किया।

विदर्भ (बरार) की विजय

- विदर्भ का शासक यज्ञसेन था। वह मौर्यों की तरफ से विदर्भ के शासक पद पर नियुक्त हुआ था, परंतु मगध साम्राज्य की दुर्बलता का लाभ उठाकर उसने स्वयं को विदर्भ का स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया।
- यज्ञसेन को शुंगों का 'स्वाभाविक शत्रु' बताया गया है।
- पुष्यमित्र के आदेश से अग्निमित्र ने उस पर आक्रमण किया और उसे परास्त कर विदर्भ को फिर से मगध साम्राज्य के अधीन कर लिया।

9 गुप्त साम्राज्य
(The Gupta Empire)

पृष्ठभूमि

- चौथी सदी ई. के प्रारंभ में भारत में कोई बड़ा संगठित राज्य अस्तित्व में नहीं था। यद्यपि कुषाण एवं शक शासकों का शासन चौथी सदी ई. तक जारी रहा लेकिन उनकी शक्ति काफी कमज़ोर हो गई थी और सातवाहन वंश का शासन तृतीय सदी ई. के मध्य से पहले ही समाप्त हो गया था। ऐसी राजनीतिक स्थिति में **गुप्त राजवंश का उदय** हुआ।
- कुषाणों के पतन के पश्चात् उत्तर भारत में अनेक राजतंत्रों एवं गणतंत्रों का उदय हुआ। राजतंत्रों में गुप्त, नाग, आभीर, इक्ष्वाकु तथा गणतंत्रों में आर्जुनायन, मालव, यौधेय, लिच्छवी आदि शामिल थे।
- कुषाणों के बाद लगभग चार शताब्दियों तक भारत का सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास होता रहा, जो कि मुख्यत: गुप्त राजाओं के शासनकाल से संबंधित है।
- गुप्त वंश का आरंभिक राज्य उत्तर प्रदेश और बिहार में था। संभवत: गुप्त शासकों के लिये बिहार की अपेक्षा उत्तर प्रदेश अधिक महत्त्व वाला प्रांत था, क्योंकि आरंभिक गुप्त मुद्राएँ और अभिलेख मुख्यत: उत्तर प्रदेश से ही पाए गए हैं।
- गुप्त संभवत: वैश्य थे तथा कुषाणों के सामंत रहे थे। कुषाणों से प्राप्त सैन्य तकनीक एवं वैवाहिक संबंधों ने गुप्त साम्राज्य के प्रसार एवं सुदृढ़ीकरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

गुप्त राजवंश के इतिहास के स्रोत

गुप्त राजवंश का इतिहास जानने के निम्नलिखित तीन महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं- (i) साहित्यिक स्रोत, (ii) पुरातात्त्विक स्रोत और (iii) विदेशी यात्रियों के विवरण।

साहित्यिक स्रोत

- विशाखदत्त के नाटक 'देवीचंद्रगुप्तम्' से गुप्त शासक रामगुप्त एवं चंद्रगुप्त द्वितीय के बारे में जानकारी मिलती है।
- इसके अलावा कालिदास की रचनाएँ (ऋतुसंहार, कुमारसंभवम्, मेघदूत, मालविकाग्निमित्रम्, अभिज्ञान शाकुंतलम्) तथा शूद्रक कृत 'मृच्छकटिकम्' और वात्स्यायन कृत 'कामसूत्र' से भी गुप्त काल की जानकारी मिलती है।

पुरातात्त्विक स्रोत

- पुरातात्त्विक स्रोत में अभिलेखों, सिक्कों तथा स्मारकों से गुप्त राजवंश के इतिहास का ज्ञान होता है।
- समुद्रगुप्त के '**प्रयाग प्रशस्ति अभिलेख**' से उसके बारे में जानकारी मिलती है।
- स्कंदगुप्त के 'भीतरी स्तंभलेख' से हूण आक्रमण के बारे में जानकारी मिलती है, जबकि स्कंदगुप्त के 'जूनागढ़ अभिलेख' से इस बात की जानकारी प्राप्त होती है कि उसने सुदर्शन झील का पुनर्निर्माण करवाया था।
- गुप्तकालीन राजाओं के सोने, चांदी तथा तांबे के सिक्के प्राप्त हुए हैं। इस काल में सोने के सिक्कों को 'दीनार', चांदी के सिक्कों को 'रूपक' अथवा 'रूप्यक' तथा तांबे के सिक्कों को 'माषक' कहा जाता था।
- गुप्तकालीन स्वर्ण सिक्कों का सबसे बड़ा ढेर राजस्थान प्रांत के 'बयाना' से प्राप्त हुआ है।
- मंदिरों में तिगवा का विष्णु मंदिर (जबलपुर, मध्य प्रदेश), भूमरा का शिव मंदिर (सतना, मध्य प्रदेश), नचना कुठारा का पार्वती मंदिर (पन्ना, मध्य प्रदेश), भीतरगाँव का मंदिर (कानपुर, उत्तर प्रदेश), देवगढ़ का दशावतार मंदिर (झाँसी, उत्तर प्रदेश) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।
- गुप्तकालीन स्मारकों, जैसे-मंदिर, मूर्तियाँ, चैत्यगृह आदि से तत्कालीन कला और स्थापत्य की जानकारी मिलती है।
- अजंता एवं बाघ की गुफाओं के कुछ चित्र भी गुप्त कालीन माने जाते हैं।

विदेशी यात्रियों के विवरण

इस काल के प्रमुख विदेशी यात्री—

फाहियान: यह चीनी यात्री था और चंद्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल में भारत आया था। इसने मध्य देश का वर्णन किया है।

ह्वेनसांग: इसने कुमारगुप्त प्रथम, बुधगुप्त, नरसिंहगुप्त 'बालादित्य' आदि गुप्त शासकों का उल्लेख किया है। इसके विवरण से ही यह पता चलता है कि कुमारगुप्त ने 'नालंदा महाविहार' की स्थापना करवाई थी।

गुप्त राजवंश: प्रारंभिक इतिहास

गुप्त राजवंश की स्थापना के संबंध में अधिकांश इतिहासकारों में मतभेद है। दो मुहरें जिनमें से एक के ऊपर संस्कृत में 'श्रीगुप्तस्य' अंकित है, से प्रतीत होता है कि 'श्रीगुप्त' नामक व्यक्ति ने इस वंश की स्थापना की थी।

गुप्त काल के प्रमुख शासक

श्रीगुप्त

- गुप्त वंश का संस्थापक श्रीगुप्त था, जिसने '**महाराज**' की उपाधि धारण की थी।
- महाराज सामंतों की उपाधि होती थी जिससे पता चलता है कि वह किसी शासक के अधीन शासन करते थे।

10

गुप्तोत्तर काल/पूर्व मध्यकाल
(Post-Gupta Period/Pre-Medieval Period)

भूमिका

छठी शताब्दी के मध्य तक लगभग गुप्त साम्राज्य विखंडित हो गया। इसके पश्चात् सामंतवाद नामक नई प्रवृत्ति के साथ विकेंद्रीकरण एवं क्षेत्रीयता की भावना का उदय हुआ। हालाँकि इस दौरान कुछ प्रमुख राजवंशों ने शासन किया, लेकिन संपूर्ण भारत को एकसूत्र में बांधा नहीं जा सका। राजनीतिक व्यवस्था की यह प्रवृत्ति तुर्क शासन की स्थापना तक जारी रही।

गुप्त वंश के पतन के बाद जिन नए वंशों का उदय हुआ, उनका विवरण निम्नलिखित है–

राजवंश	स्थान	प्रमुख शासक	उपलब्धि
मैत्रक	वल्लभी	भट्टारक, धरसेन, ध्रुवसेन प्रथम, धरनपट्ट गुहसेन, शिलादित्य प्रथम	गुप्तोत्तर काल के नवोदित राज्यों पर सबसे लंबे समय तक शासन किया।
मौखरि	कन्नौज	हरिवर्मा, ईशानवर्मा, सर्ववर्मा	इन्होंने हूणों को पराजित कर पूर्वी भारत को उनके आक्रमण से बचाया।
पुष्यभूति	थानेश्वर	पुष्यभूति, प्रभाकरवर्धन, राज्यवर्धन, हर्षवर्धन	विशाल राज्य स्थापित किया।
परवर्ती गुप्त	मगध	महासेन गुप्त, देवगुप्त, आदित्य सेन	मौखरियों से राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता रही।
चंद्र (गौड़)	बंगाल	शशांक	थानेश्वर एवं कन्नौज शासकों से इसकी शत्रुता रही।

थानेश्वर का पुष्यभूति (वर्धन) वंश

- गुप्त साम्राज्य के पतन के पश्चात् उत्तर भारत के राजवंशों में थानेश्वर का पुष्यभूति वंश सर्वाधिक महत्वपूर्ण और शक्तिशाली सिद्ध हुआ। इतिहास में यही राजवंश वर्धन वंश के नाम से प्रसिद्ध है।
- पुष्यभूति वंश का संस्थापक पुष्यभूति था। इस वंश को वैश्य जाति से संबंधित माना जाता है।
- पुष्यभूति गुप्तों के सामंत थे, किंतु हूणों के आक्रमण के बाद उन्होंने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी थी।
- यह राजवंश हूणों के साथ हुए अपने संघर्ष के कारण प्रसिद्ध हुआ।
- इस वंश में नरवर्धन, आदित्यवर्धन तथा प्रभाकरवर्धन जैसे शासक हुए।
- प्रभाकरवर्धन के दो पुत्र राज्यवर्धन एवं हर्षवर्धन तथा पुत्री राज्यश्री थी।
- राज्यश्री का विवाह कन्नौज के मौखरि वंश के शासक गृहवर्मन के साथ हुआ था।
- गौड़ शासक शशांक द्वारा राज्यवर्धन को मार दिये जाने के बाद हर्षवर्धन शासक बना।

ह्वेनसांग का विवरण

- हर्षवर्धन के शासनकाल में चीनी यात्री ह्वेनसांग स्थल मार्ग से भारत आया। वह चीन से 629 ई. में चला और सारे रास्ते घूमते हुए भारत पहुँचा। भारत में लंबे अरसे तक ठहर कर 645 ई. में चीन लौट गया। वह नालंदा (बिहार) के बौद्ध विश्वविद्यालय में पढ़ने और भारत से बौद्ध ग्रंथ संग्रह करने के उद्देश्य से आया था।
- उसने अपना ग्रंथ **'सी-यू-की'** के नाम से लिखा। ह्वेनसांग को **'यात्रियों का राजकुमार'** तथा **'वर्तमान शाक्यमुनि'** कहा गया।
- ह्वेनसांग के अनुसार, भारतीय समाज चार वर्णों में विभक्त था, जिसमें ब्राह्मण सर्वोच्च थे। उसने शूद्रों को किसान कहा था। उसके अनुसार, भारतीय लोग दाँतों पर काला निशान लगाते थे और कान में कुंडल पहनते थे।

हर्षवर्धन *(606–647 ई.)*

- राज्यवर्धन की मृत्यु के बाद 606 ई. में 16 वर्ष की अवस्था में हर्षवर्धन थानेश्वर की गद्दी पर बैठा। ह्वेनसांग हर्ष को **'शिलादित्य'** के नाम से संबोधित करता है।
- हर्ष का साम्राज्य सामंती संगठन पर आधारित था, जो हर्ष की उपाधियों– परमभट्टारक, महाराजाधिराज, सकलोत्तरापथेश्वर, चक्रवर्ती, सार्वभौम, परमेश्वर, परममाहेश्वर आदि से स्पष्ट हो जाता है।
- गुप्तों के विघटन के बाद उत्तर भारत में जिस राजनीतिक विकेंद्रीकरण के युग का प्रारंभ हुआ, हर्षवर्धन के राज्यारोहण के साथ ही उसकी समाप्ति हुई। वर्धन वंश के इस यशस्वी सम्राट ने अपने यश के द्वारा उत्तर भारत के विशाल भू-भाग को अपने साम्राज्य के अंतर्गत संगठित किया।

हर्ष का शासनकाल

- हर्ष ने शशांक (गौड़ शासक) को पराजित कर कन्नौज पर अधिकार कर लिया। उसने उत्तरी भारत के अन्य राजाओं को भी अपने अधीन कर लिया।
- ह्वेनसांग के विवरण के अनुसार, हर्ष ने उत्तरी भारत के पाँच राज्यों को अपने अधीन किया; संभवतः ये पाँच राज्य-पंजाब, कन्नौज, गौड़ या बंगाल, मिथिला और उड़ीसा (वर्तमान ओडिशा) थे।
- पश्चिम में उसने वल्लभी के शासक 'ध्रुवसेन द्वितीय' से अपनी पुत्री का विवाह कर शत्रुता समाप्त की और मैत्री संबंध स्थापित किया।
- हर्ष एवं पुलकेशिन द्वितीय के बीच नर्मदा नदी के तट पर युद्ध हुआ, जिसमें हर्ष की पराजय हुई। **ऐहोल प्रशस्ति** में इसका उल्लेख मिलता है। पुलकेशिन द्वितीय चालुक्य वंश का प्रतापी शासक था।

11 संगम काल
(Sangam Period)

भूमिका

भारत के सुदूर दक्षिण के तीनों ओर समुद्र से घिरा दक्षिणतम् भू-भाग प्राचीन काल में तमिलकम् या तमिलहम् नाम से विख्यात था। ऐतिहासिक युग के प्रारंभ में दक्षिण भारत का क्रमबद्ध इतिहास हमें संगम साहित्य से प्राप्त होता है। 'संगम' का अर्थ तमिल कवियों का संघ, परिषद् अथवा गोष्ठी से है, जिसे राजकीय संरक्षण प्राप्त होता था। इन्हीं कवियों द्वारा तमिल साहित्य रचा गया, जो संगम साहित्य के नाम से प्रचलित हुआ। संगम काल के बारे में हमें संगम साहित्य के अलावा अन्य स्रोतों यथा-स्ट्रैबो, पेरिप्लस ऑफ द एरिथ्रियन सी (अज्ञात यूनानी लेखक की रचना), प्लिनी, टॉलेमी आदि की रचनाओं से भी जानकारी मिलती है।

'संगम' आयोजन में तमिल कवि एवं विद्वान एकत्रित होते थे। प्रत्येक कवि एवं लेखक अपनी रचनाओं को संगम के सामने प्रस्तुत करते थे तथा उनकी स्वीकृति के बाद ही किसी रचना का प्रकाशन संभव हो पाता था। संगम साहित्य से ही ज्ञात होता है कि ऋषि अगस्त्य एवं कौंडिन्य ने दक्षिण भारत में वैदिक संस्कृति एवं सभ्यता का प्रचार-प्रसार किया। मदुरै में मंडल अथवा सम्मेलन के रूप में तमिल कवियों का यह संगम पर्याप्त समुन्नत स्थिति में था। इसका सर्वप्रथम उल्लेख इरैयनार अगप्पोरुल के भाष्य से प्राप्त होता है। इस प्रकार तमिल कवियों के संगम पर आधारित प्राचीनतम तमिल साहित्य, संगम साहित्य कहलाता है और वह युग जिसके विषय में इस साहित्य द्वारा जानकारी प्राप्त होती है 'संगम युग' कहलाता है। संगम साहित्य का संकलन नौ खंडों में उपलब्ध है।

'संगम' अथवा सम्मेलन

प्राप्त विवरण के अनुसार पांड्य राजाओं के संरक्षण में कुल तीन संगम आयोजित किये गए-

प्रथम संगम

- संगम अथवा सम्मेलन के अंतर्गत तमिल कवि एवं विद्वान एकत्रित होते थे और अपनी रचनाएँ 'संगम' के सामने प्रस्तुत करते थे।
- प्रथम संगम पांड्य राजाओं की राजधानी मदुरै में अगस्त्य ऋषि की अध्यक्षता में आयोजित किया गया था।
- प्रथम संगम में सदस्यों की कुल संख्या 549 थी। इस संगम में 4499 लेखकों ने अपनी रचनाओं की प्रस्तुति की तथा उन्हें प्रकाशित करवाने की आज्ञा प्राप्त की।
- प्रथम संगम 89 पांड्य राजाओं के संरक्षण में हुआ, जो 4,400 वर्षों तक चला।
- प्रथम संगम में जिन ग्रंथों का संकलन हुआ, उनमें अकट्टियम, परिपदाल, मुदुनारै, मुदुकुरुकु तथा कलरि आविरै आदि प्रमुख थे। वर्तमान में इनमें से कोई भी रचना उपलब्ध नहीं है।

द्वितीय संगम

- द्वितीय संगम कपाटपुरम् (अलैवाई) में आयोजित किया गया तथा इस संगम की अध्यक्षता अगस्त्य ऋषि ने की।
- इस संगम में 3700 रचनाकारों ने अपनी रचनाओं को प्रकाशित करवाने की आज्ञा प्राप्त की।
- द्वितीय संगम 59 पांड्य राजाओं के संरक्षण में हुआ। यह संगम भी अत्यधिक लंबी अवधि तक चला।
- इस संगम में संकलित साहित्यों में तमिल व्याकरण ग्रंथ 'तोल्काप्पियम' ही एकमात्र शेष है। इस ग्रंथ की रचना का श्रेय अगस्त्य ऋषि के शिष्य तोल्काप्पियर को दिया जाता है।

तृतीय संगम

- तृतीय संगम का आयोजन पांड्य राजाओं की राजधानी मदुरै में किया गया। इस संगम की अध्यक्षता नक्कीरर ने की थी।
- तृतीय संगम में 449 कवियों को उनकी रचना प्रकाशित करने की आज्ञा मिली। यह संगम 1,850 वर्षों तक चलता रहा।
- तृतीय संगम में संकलित की गई रचनाएँ वर्तमान में भी उपलब्ध हैं, जिनकी संख्या 49 है।
- तृतीय संगम को 49 पांड्य शासकों का संरक्षण मिला।
- इस संगम द्वारा संकलित उत्कृष्ट रचनाएँ नेदुंथोकै, कुरुंथोकै, नत्रिनई, एन्कुरुन्नूर पदित्रुप्पट, नूत्रैंबथू, परि-पादल, कूथु, वरि, पैरिसै तथा सित्रिसै है।
- उल्लेखनीय है कि वर्तमान में उपलब्ध तमिल ग्रंथ का संकलन इसी संगम में किया गया था।

संगम अथवा सम्मेलन

संगम	अध्यक्ष	संरक्षक	स्थल	सदस्यों की संख्या
प्रथम	अगस्त्य ऋषि	पांड्य शासक	मदुरै	549
द्वितीय	अगस्त्य ऋषि	पांड्य शासक	कपाटपुरम्	59
तृतीय	नक्कीरर	पांड्य शासक	मदुरै	49

संगम साहित्य

- प्राचीन संगम काल में जिन संगम ग्रंथों की रचनाएँ की गईं, उन्हें संगम साहित्य कहा गया। विषय-वस्तु की दृष्टि से संगम साहित्य में 'प्रेम' और 'राजाओं की प्रशंसा' पर अधिक ज़ोर दिया जाता था। तमिल में प्रेम संबंधी मानवीय पहलुओं पर आधारित रचनाओं को 'अगम' तथा राजाओं की प्रशंसा, सामाजिक जीवन, नैतिकता, वीरता, रीति-रिवाजों संबंधी रचनाओं को 'पुरम' कहा जाता था।

12 प्राचीन भारत के विविध पहलू
(Various Aspects of Ancient India)

भारत का नामकरण

- भारत को अनेक नामों से पुकारा गया है। प्राचीन काल में भारत के विशाल उपमहाद्वीप को 'भारतवर्ष' के नाम से जाना जाता था। संभवत: भारत का नामकरण ऋग्वैदिक काल के प्रमुख जन 'भरत' के नाम पर किया गया।
- भारत देश जंबूद्वीप का दक्षिणी भाग था। आर्यों का निवास स्थल होने के कारण इसका नामकरण 'आर्यावर्त' के रूप में हुआ।
- भारत का अंग्रेज़ी नाम 'इंडिया' की उत्पत्ति 'इंडस' (सिंधु) शब्द से हुई है जो यूनानियों द्वारा चौथी सदी से प्रचलन में है। इंडिया नाम पुरानी अंग्रेज़ी में 9वीं सदी से और आधुनिक अंग्रेज़ी में 17वीं सदी से मिलता है। चीनियों ने प्रारंभ में भारत के लिये तिएन-चू अथवा चुआंतू शब्द का प्रयोग किया, लेकिन ह्वेनसांग के बाद वहाँ पर 'यिन-तू' शब्द का चलन हो गया।
- मध्यकालीन इतिहास लेखकों (फारसी और अरबी) ने इस देश को 'हिंद' अथवा 'हिंदुस्तान' शब्द से संबोधित किया। इत्सिंग ने भारत के लिये 'आर्य देश' और 'ब्रह्मराष्ट्र' जैसे शब्दों का प्रयोग किया है।
- एक प्रदेश के रूप में भारत का प्रथम सुनिश्चित उल्लेख पाणिनी लिखित 'अष्टाध्यायी' में मिलता है।

प्राचीनकालीन प्रमुख शिक्षा के केंद्र

तक्षशिला

- तक्षशिला, वर्तमान पाकिस्तान के रावलपिंडी ज़िले में स्थित है। यह प्राचीन समय में राजनीति और शस्त्रविद्या की शिक्षा का प्रमुख केंद्र था।
- कोशल के राजा प्रसेनजित, मगध का राजवैद्य जीवक, सुप्रसिद्ध राजनीतिविद् चाणक्य, बौद्ध विद्वान वसुबंधु आदि ने यहाँ से शिक्षा प्राप्त की थी। चाणक्य यहाँ के प्रमुख आचार्य थे।

नालंदा

- प्राचीन भारत के शिक्षा केंद्रों में नालंदा विश्वविद्यालय का नाम सर्वाधिक उल्लेखनीय है। इसकी स्थापना गुप्त शासक कुमारगुप्त प्रथम (415–455 ई.) ने की थी।
- इस विश्वविद्यालय में 8 बड़े कमरे तथा व्याख्यान के लिये 300 छोटे कमरे बने हुए थे। यहाँ भारत के अतिरिक्त चीन, मंगोलिया, तिब्बत, कोरिया, मध्य एशिया आदि देशों से भी विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने आते थे। नालंदा महायान बौद्ध धर्म की शिक्षा का प्रमुख केंद्र था।
- यहाँ लगभग 10,000 विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिये करीब 2000 शिक्षक थे।
- ह्वेनसांग ने यहाँ 18 महीने तक रहकर अध्ययन किया था। ह्वेनसांग के समय इस विश्वविद्यालय के कुलपति शीलभद्र थे।
- इत्सिंग ने यहाँ रहकर 400 संस्कृत ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ तैयार की थी। यहाँ का 'धर्मगंज' नामक पुस्तकालय तीन भव्य भवनों-रत्नासागर, रत्नोद्धि तथा रत्नरंजक में स्थित था।
- वर्तमान में नालंदा विश्वविद्यालय, बिहार की राजधानी पटना से लगभग 90 किमी. दूर नालंदा ज़िले के राजगीर नामक स्थान पर स्थित है।

वल्लभी

- वल्लभी पश्चिम भारत में शिक्षा तथा संस्कृति का प्रसिद्ध केंद्र था। यह हीनयान बौद्ध धर्म की शिक्षा का प्रमुख केंद्र था।
- इत्सिंग के अनुसार, सभी देशों के विद्वान यहाँ एकत्रित होते थे तथा विविध सिद्धांतों पर शास्त्रार्थ करके उनकी सत्यता निर्धारित किया करते थे।
- ह्वेनसांग के अनुसार, यहाँ एक सौ बौद्ध विहार थे जिनमें लगभग 6000 हीनयानी भिक्षु निवास करते थे।

विक्रमशिला

- विक्रमशिला के महाविहार की स्थापना पाल नरेश धर्मपाल (770–810 ई.) ने करवाई थी। विक्रमशिला विश्वविद्यालय में छह महाविद्यालय थे। प्रत्येक में एक केंद्रीय कक्ष तथा 108 अध्यापक थे। केंद्रीय कक्ष को 'विज्ञान भवन' कहा जाता था। यहाँ के आचार्यों में दीपंकर एवं श्रीज्ञान का नाम सर्वाधिक उल्लेखनीय है।
- यहाँ के स्नातकों को अध्ययनोपरांत पाल शासकों द्वारा उपाधियाँ प्रदान की जाती थीं। स्नातकों को 'पंडित' की उपाधि दी जाती थी। महापंडित, उपाध्याय तथा आचार्य क्रमश: उच्चतर उपाधियाँ थीं। 1203 ई. में मुस्लिम आक्रमणकारी बख्तियार खिलजी ने विक्रमशिला विश्वविद्यालय को ध्वस्त कर दिया तथा भिक्षुओं की सामूहिक हत्या की।

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी

- प्राचीन भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की महत्त्वपूर्ण प्रगति हुई। खगोल विद्या में इसलिये प्रगति हुई, क्योंकि ग्रह देवता माने जाने लगे थे। ग्रहों का संबंध ऋतुओं और मौसमों के परिवर्तनों से था तथा इन परिवर्तनों का संबंध खेती से था।
- प्राचीन काल में व्याकरण और भाषाविज्ञान का उद्भव इसलिये हुआ, क्योंकि ब्राह्मण एवं पुरोहित वेद की ऋचाओं और मंत्रों के उच्चारण की शुद्धता को बहुत अधिक महत्त्व देते थे।

खंड–2

मध्यकालीन भारत

13 मध्यकालीन भारतीय इतिहास के स्रोत
(Sources of Medieval Indian History)

भूमिका

प्राचीन भारतीय इतिहास की तुलना में मध्यकालीन भारतीय इतिहास से संबंधित ऐतिहासिक सामग्री प्रचुर मात्रा में है। इसका मुख्य कारण प्राचीन काल में ऐतिहासिक ग्रंथों का अभाव या फिर उनकी उपलब्धता की कमी है। मध्यकालीन भारतीय इतिहास जानने के लिये ऐतिहासिक स्रोतों की कमी नहीं है। इतिहास लेखन में मुस्लिम सुल्तान और उलेमा रुचि रखते थे। मुस्लिम इतिहासकारों ने सुल्तान और उनकी भारतीय विजयों का विस्तृत विवरण दिया है। साहित्यिक स्रोतों के अतिरिक्त मध्यकालीन भारत में विदेशी यात्रियों के यात्रा वृत्तांत, शिक्षित सुल्तानों की आत्मकथा, विजय अभियानों के बाद स्थापित विजय स्मारक, विजय स्तंभ आदि ऐतिहासिक स्रोतों से भी पर्याप्त जानकारी मिलती है।

सल्तनत काल में फारसी और अरबी पुस्तकों की रचना की गई। हालाँकि इनके लेखकों को हम वैज्ञानिक इतिहासकारों की श्रेणी में नहीं रख सकते, क्योंकि वे केवल तात्कालिक शासकों के कार्यकलापों तक ही सीमित थे, परंतु इन रचनाओं से सल्तनतकालीन इतिहास और कालक्रम की पर्याप्त जानकारी मिलती है।

सल्तनतकालीन प्रमुख ऐतिहासिक स्रोत

साहित्यिक साक्ष्य

फारसी तथा अरबी साहित्य

तुर्क-अफगान शासक मूलत: सैनिक थे और स्वयं शिक्षित नहीं थे। हालाँकि उन्होंने इस्लामी विधाओं और कलाओं को प्रोत्साहन दिया। प्रत्येक सुल्तान के दरबार में फारसी लेखकों, विद्वानों तथा कवियों का जमावड़ा लगा रहता था। उनकी रचनाओं से उस काल के इतिहास की महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ मिलती हैं। इनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है:

तारीख-उल-हिंद

- इस पुस्तक की रचना अलबरूनी द्वारा की गई। वह महमूद गज़नवी के आक्रमण के समय भारत आया था। वह अरबी और फारसी भाषा का ज्ञाता था।
- अपनी इस पुस्तक में उसने 11वीं शताब्दी के प्रारंभ में हिंदुओं के साहित्य, विज्ञान तथा धर्म का आँखों देखा सजीव वर्णन किया है। इस पुस्तक के अध्ययन से तात्कालिक सामाजिक दशा का पर्याप्त ज्ञान होता है। यह पुस्तक 'किताब-उल-हिंद' के नाम से भी प्रसिद्ध है।

चचनामा

- यह अरबी भाषा में लिखी गई है। मुहम्मद अली-बिन-अबूबकर कुफी ने नासिरूद्दीन कुवाचा के समय में इसका फारसी में अनुवाद किया।
- 'चचनामा' अरबों की सिंध-विजय की जानकारी का मूल स्रोत है।

ताज़-उल-मासिर

- इसकी रचना हसन निज़ामी द्वारा की गई। इस पुस्तक में 1192 ई. से 1228 ई. तक के भारत की घटनाओं का विवरण दिया गया है। इसमें राजनीतिक घटनाओं के साथ-साथ सामाजिक तथा धार्मिक जीवन का उल्लेख भी किया गया है। दिल्ली सल्तनत के प्रारंभिक दिनों का प्रामाणिक इतिहास इस पुस्तक में पर्याप्त रूप से मिलता है।
- यह अरबी एवं फारसी दोनों भाषाओं में लिखी गई है।

तारीख-ए-फिरोज़शाही

- 'तारीख-ए-फिरोज़शाही' ज़ियाउद्दीन बरनी की कृति है। वह तुगलक शासकों का समकालीन था। 'तारीख-ए-फिरोज़शाही' में बलबन के सिंहासनारोहण से लेकर फिरोज़शाह तुगलक के शासनकाल के छठे वर्ष तक का वर्णन है। इस रचना में उस काल के सामाजिक, आर्थिक जीवन तथा न्याय सुधारों का वर्णन किया गया है।
- चूँकि, बरनी राजस्व अधिकारी के पद पर कार्यरत था अत: उसने अपनी पुस्तक में राजस्व स्थिति का वर्णन स्पष्ट एवं विस्तारपूर्वक किया है। उसने इस ग्रंथ में तत्कालीन संतों, दार्शनिकों, इतिहासकारों, कवियों, चिकित्सकों आदि के विषय में भी लिखा है। इसके साथ ही अलाउद्दीन ख़िलजी के शासनकाल की सामाजिक तथा आर्थिक दशा का इस पुस्तक में सजीव वर्णन मिलता है।
- इस पुस्तक की एक सीमा धार्मिक पक्षपात है। हालाँकि समकालीन इतिहास वर्णन की दृष्टि से इसका ऐतिहासिक महत्त्व है।

फुतूहात-ए-फिरोज़शाही

- इसमें फिरोज़शाह तुगलक के शासन प्रबंध के बारे में विस्तृत जानकारी दी गई है। इसमें फिरोज़शाह तुगलक के सैन्य अभियानों का वर्णन किया गया है। इसके विषय में कहा जाता है कि स्वयं फिरोज़शाह तुगलक ने इसे लिखा है।

जैनुल अखबार

- इस पुस्तक के लेखक अबी सईद थे। इसमें ईरान के इतिहास का वर्णन किया गया है।
- इस पुस्तक से महमूद गज़नवी के जीवन तथा क्रियाकलापों की जानकारी मिलती है।

तबकात-ए-नासिरी

- इस पुस्तक का लेखक मिन्हाज-उस-सिराज है, जिसने मुहम्मद गौरी की भारत विजय से लेकर 1259-60 ई. तक का वर्णन किया है।

14 अरबों द्वारा सिंध की विजय
(The conquest of Sindh by the Arabs)

भूमिका

अरब एवं बाद में तुर्कों द्वारा भारत पर आक्रमण भारतीय इतिहास की महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हैं। अरबों द्वारा धन की लूट के लिये सिंध एवं उसके आसपास के क्षेत्रों में आक्रमण किये गए। भारत पर सर्वप्रथम मुस्लिम आक्रमण 711 ई. में उबैदुल्लाह के नेतृत्व में हुआ। इसके बाद 711 ई. में ही बुदैल के नेतृत्व में दूसरा आक्रमण हुआ। ये दोनों ही आक्रमण असफल हुए। अंततः 712 ई. में मुहम्मद-बिन-कासिम के नेतृत्व में पहला सफल मुस्लिम आक्रमण भारत पर हुआ। उस समय सिंध पर दाहिर का शासन था। सिंध विजय के बावजूद अरब आक्रमणकारी भारत में उस प्रकार का साम्राज्य नहीं बना पाए जैसा कि उस समय उन्होंने एशिया, अफ्रीका और यूरोप के विभिन्न भागों में बनाया था।

712 ई. में अरबों से पराजय तथा आगामी चुनौतियों का सामना करने के लिये कई नई शक्तियों (गुर्जर प्रतिहार, राष्ट्रकूट, चालुक्य आदि) का प्रादुर्भाव हुआ, जिन्होंने भारत में आगामी 300 वर्षों तक शासन किया। अरब आक्रमण के बाद भारतीय प्रायद्वीप एक लंबे समयांतराल तक विदेशी आक्रमणों से सुरक्षित रहा, लेकिन 1000 ई. के आसपास भारत में एक बार पुनः विकेंद्रीकरण और विभाजन की स्थितियाँ सक्रिय हो उठीं। परिणामतः तुर्कों ने महमूद गज़नवी के नेतृत्व में भारत पर (कुल 17 बार) आक्रमण किये। भारत में मुस्लिम शासन की स्थापना का श्रेय अरबों की अपेक्षा तुर्कों को दिया जाता है।

आठवीं शताब्दी के आरंभ में भारत की राजनीतिक दशा

इस समय देश में कोई सर्वोच्च केंद्रीय शक्ति नहीं थी। भारत विभिन्न छोटे-छोटे राज्यों का संग्रह था और प्रत्येक राज्य स्वतंत्र एवं सार्वभौम था। आठवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में प्रमुख राज्य निम्न थे–

अफगानिस्तान

- अरब आक्रमण के समय अफगानिस्तान में एक ब्राह्मण वंश का शासन था। मुसलमान लेखकों ने इस वंश को हिंदुशाही साम्राज्य अथवा 'काबुल' या 'जाबुल' का साम्राज्य कहा है।

कश्मीर

सातवीं शताब्दी में कश्मीर में दुर्लभवर्धन ने कार्कोट वंश की स्थापना की। ह्वेनसांग ने उसके शासनकाल में कश्मीर की यात्रा की। दुर्लभवर्धन का उत्तराधिकारी दुर्लभक (632–682 ई.) हुआ, जिसने 'प्रतापादित्य' की उपाधि धारण की।

कश्मीर के शासकों में ललितादित्य मुक्तापीड, जो लगभग 724 ई. में सिंहासन पर बैठा उसका साम्राज्य पूर्व में बंगाल, दक्षिण में कोंकण, उत्तर-पश्चिम में तुर्कमेनिस्तान और उत्तर-पूर्व में तिब्बत तक विस्तृत था। वह अपने वंश का प्रतापी शासक था। उसके समय में सूर्य देवता के लिये 'मार्तंड मंदिर' बनवाया गया। 740 ई. के लगभग उसने कन्नौज के राजा यशोवर्मन को पराजित किया।

नेपाल

सातवीं शताब्दी में नेपाल, जिसके उत्तर में तिब्बत व दक्षिण में कन्नौज का राज्य था, हर्ष के साम्राज्य में मध्यवर्ती राज्य था। अंशुवर्मन ने नेपाल में वैश्व ठाकुरी वंश की नींव रखी। उसने तिब्बत के साथ मैत्री संबंध स्थापित किये। उसने अपनी कन्या का विवाह तिब्बत के शासक के साथ किया। हर्ष की मृत्यु के बाद तिब्बत व नेपाल की सेना ने चीन के राजदूत वांग ह्यूंगसे (Wang-hiuen-tse) को कन्नौज के सिंहासन का अपहरण करने वाले अर्जुन के विरुद्ध सहायता प्रदान की।

कामरूप (असम)

हर्ष के समय कामरूप में भास्कर वर्मन का शासन था। हर्ष की मृत्यु के उपरांत उसने अपने राज्य की स्वतंत्रता की घोषणा की। यह प्रतीत होता है कि वह अधिक समय तक स्वाधीन न रह सका।

- भास्कर वर्मन ने लगभग 650 ई. तक शासन किया। भास्कर वर्मन के बाद उसका वंश समाप्त हो गया। कालांतर में कामरूप पाल साम्राज्य का अंग बन गया।

कन्नौज

- हर्ष की मृत्यु के पश्चात् अर्जुन (एक स्थानीय शासक) ने कन्नौज पर अधिकार कर लिया। उसने चीन के राजदूत वांग ह्यूंगसे का विरोध किया, जो हर्ष की मृत्यु के उपरांत वहाँ पहुँचा था। वांग ह्यूंगसे पुनः असम, तिब्बत व नेपाल की सैन्य सहायता लेकर लौटा। युद्ध में अर्जुन की हार हुई। अर्जुन को बंदी बनाकर चीन ले जाया गया तत्पश्चात् वहीं कारागार में उसकी मृत्यु हो गई।
- आठवीं शताब्दी के आरंभ में यशोवर्मन कन्नौज के सिंहासन पर बैठा। अपने पराक्रम से उसने पुनः कन्नौज को अपने अतीत का गौरव प्रदान किया। वह सिंध के राजा दाहिर का समकालीन था।
- इसके उपरांत कन्नौज पर आधिपत्य के लिये 8वीं शताब्दी की तीन बड़ी शक्तियों- पाल, गुर्जर प्रतिहार व राष्ट्रकूटों के मध्य एक संग्राम हुआ, जिसे 'त्रिपक्षीय संघर्ष' के नाम से जाना जाता है। कुछ समय के लिये कन्नौज पर प्रतिहारों का आधिपत्य स्थापित हो गया, परंतु बाद में उनका स्थान पाल वंश ने ले लिया। अंततोगत्वा इस युद्ध में प्रतिहारों की विजय हुई। इसके बाद प्रतिहार उत्तर भारत की एक महत्त्वपूर्ण शक्ति के रूप में उभर कर आए।

15 तुर्कों के आक्रमण से पूर्व भारतीय राजवंश
(Indian Dynasty before the Invasion of Turks)

भूमिका

712 ई. में अरब आक्रमणकारी मुहम्मद बिन कासिम ने सिंध एवं मुल्तान दोनों राज्यों पर विजय प्राप्त की, हालाँकि बाद में दमिश्क में आंतरिक अशांति और ख़लीफ़ा के सत्ता परिवर्तन के कारण 871 ई. तक ये दोनों राज्य स्वतंत्र हो गए। ग्यारहवीं शताब्दी के आरंभ में मुल्तान में करमाथी जाति का शासक फतेह दाऊद का शासन था। तुर्क आक्रमण के समय सिंध में अरब के मुसलमान स्वतंत्र शासन करते थे।

अरबों का भारत पर प्रभुत्व एक सीमा विशेष तक ही रहा और धीरे-धीरे वे प्रभावहीन हो गए। लेकिन तात्कालिक राजनीतिक दृष्टि से देखा जाए तो कहा जा सकता है कि अरबों ने एक ऐसी चुनौती पेश की, जिसका सामना करने के लिये कालांतर में अनेक शक्तियाँ उदित हुईं, जो भारत में आगामी 300 वर्षों अथवा तुर्कों के आक्रमण से पूर्व तक बनी रही।

इस अध्याय के अंतर्गत हम तुर्कों के आक्रमण से पूर्व प्रमुख भारतीय राजवंशों का संक्षिप्त अध्ययन करेंगे।

हिंदुशाही राज्य

- उत्तरी भारत का यह एक विशाल राज्य था जो कश्मीर की सीमा से मुल्तान की सीमा तक फैला हुआ था और चेनाब नदी से लेकर हिंदुकुश पर्वतमाला तक विस्तृत था।
- अरब के शासक इस राज्य को लगभग 200 साल के भरसक प्रयासों के बाद भी न जीत सके। अंत में उन्हें अफगानिस्तान और काबुल छोड़ना पड़ा।
- दसवीं शताब्दी के अंत में जयपाल यहाँ का शासक बना। वह अपनी वीरता और योग्यता के लिये प्रसिद्ध था, किंतु विदेशी तुर्कों का सामना करने में वह असफल रहा।

जेजाकभुक्ति का चंदेल वंश

- 9वीं सदी के आरंभ में बुंदेलखंड क्षेत्र में इनका उदय हुआ। संभवत: ये जनजातीय (गोंड) मूल के थे।
- इस वंश का प्रमुख शासक नन्नुक था। उसके पौत्र जयसिंह अथवा जेजा के नाम पर उनका राज्य 'जेजाकभुक्ति' कहलाया।
- चौहान राजा पृथ्वीराज के हाथों 1182 ई. में परमर्दिदेव की पराजय के बाद इनकी शक्ति का पतन हो गया।

बादामी या वातापी के चालुक्य

- छठी शताब्दी के मध्य से लेकर आठवीं शताब्दी के मध्य तक दक्षिणापथ पर जिस चालुक्य वंश की शाखा का आधिपत्य रहा, उसका उत्कर्ष स्थल बादामी या वातापी होने के कारण उसे 'बादामी' या 'वातापी का चालुक्य' कहा जाता है।
- पुलकेशिन द्वितीय के ऐहोल अभिलेख से वातापी के चालुक्यों के बारे में प्रामाणिक जानकारी प्राप्त होती है। ऐहोल अभिलेख (एक प्रशस्ति के रूप में) की रचना रविकीर्ति ने की थी।
- वातापी के चालुक्य वंश का संस्थापक पुलकेशिन प्रथम था।
- कीर्तिवर्मन प्रथम (566–597 ई.) को 'वातापी का प्रथम निर्माता' कहा जाता है।
- पुलकेशिन द्वितीय (609–642 ई.) चालुक्य वंश के शासकों में सर्वाधिक प्रतापी शासक हुआ। ऐहोल अभिलेख से पता चलता है कि पुलकेशिन द्वितीय का हर्ष से नर्मदा नदी के तट पर युद्ध हुआ। इस युद्ध में पुलकेशिन द्वितीय ने हर्ष को पराजित किया।
- कालांतर में विक्रमादित्य द्वितीय के बाद 746 ई. के लगभग कीर्तिवर्मन द्वितीय विशाल चालुक्य साम्राज्य का स्वामी बना, हालाँकि वह अपने पूर्वजों द्वारा स्थापित साम्राज्य को कायम रखने में असमर्थ रहा। दंतिदुर्ग नामक राष्ट्रकूट शासक ने उसे परास्त कर महाराष्ट्र में राष्ट्रकूट वंश की नींव डाली।

गुजरात (अन्हिलवाड़) का चालुक्य अथवा सोलंकी वंश

- दसवीं सदी के अंत में मूलराज प्रथम ने गुजरात में चालुक्य वंश की नींव डाली।
- जयसिंह सिद्धराज और कुमारपाल के प्रयत्नों से यह राज्य पश्चिमी भारत का एक महान शक्तिशाली राज्य बन गया। इस राज्य की सीमा के अंदर गुजरात, सौराष्ट्र, मालवा, आबू, नदौला और कोंकण स्थित थे।
- भीम प्रथम (1022-1064) इस वंश का सर्वाधिक शक्तिशाली शासक था। इसके शासनकाल में गुजरात पर महमूद ग़ज़नवी का आक्रमण (1025-26 ई.) हुआ।
- 1187 ई. में कुतुबुद्दीन ऐबक ने गुजरात पर आक्रमण करके अन्हिलवाड़ पर अधिकार कर लिया।
- परांतक प्रथम के बाद अगले लगभग 30 वर्षों तक का समय चोलों की अवनति का काल था, जिसमें परांतक द्वितीय या सुंदर चोल तथा उत्तम चोल ने शासन किया।

कल्याणी के चालुक्य

- कल्याणी के चालुक्य वंश की स्वतंत्रता का जन्मदाता तैलप (तैल, तैलप्प, तैलपप्पा) द्वितीय था।
- सोमेश्वर प्रथम, 1043 ई. में शासक बना। उसने अपनी राजधानी मान्यखेत से कल्याणी में स्थानांतरित की।

16 तुर्कों का आक्रमण
(Invasion of the Turks)

भूमिका

712 ई. में अरबों के आक्रमण और उसकी प्रतिक्रियास्वरूप भारत में कई प्रभावशाली साम्राज्यों का उदय हुआ। हालाँकि 300 वर्षों तक भारत सहित सिंहल द्वीप, जावा, सुमात्रा में शासन करने वाले सम्राट, अपने आपसी संघर्ष, देश में केंद्रीकृत शक्ति का अभाव, सत्तालोभ के लिये तुर्कों की सहायता आदि के कारण तुर्क-मुसलमानों के आक्रमण को विफल करने में असफल रहे। अर्थात् कहा जा सकता है कि अरबों का प्रारंभ किया हुआ कार्य तुर्कों ने पूरा किया। भारत में मुस्लिम शासन की स्थापना का श्रेय तुर्कों को जाता है। इस अध्याय के अंतर्गत हम भारत पर तुर्क आक्रमण, तुर्क आक्रमण के बाद भारत की राजनीतिक स्थिति में बदलाव, तुर्कों की विजय का प्रभाव आदि संदर्भों का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

तुर्क मुसलमान

- तुर्क, चीन की उत्तरी-पश्चिमी सीमाओं पर निवास करने वाली एक लड़ाकू एवं बर्बर जाति थी।
- तुर्क, उमैय्यावंशी शासकों के संपर्क में आने के बाद इस्लाम धर्म के संपर्क में आए।
- कालांतर में उन्होंने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। उनका उद्देश्य एक विशाल मुस्लिम साम्राज्य स्थापित करना था।

अलप्तगीन

- अलप्तगीन बुखारा के सामानी वंश के शासक अब्दुल मलिक (954-961 ई.) का तुर्क दास था। बाद में उसकी योग्यता और दूरदर्शिता के कारण 956 ई. में उसे खुरासान का राज्यपाल नियुक्त किया गया।
- 961 ई. में अब्दुल मलिक के देहांत के बाद उत्तराधिकार के संघर्ष (अब्दुल मलिक के भाई और चाचा) में अलप्तगीन ने उसके चाचा की सहायता की, परंतु अब्दुल मलिक का भाई मंसूर सिंहासन पाने में सफल रहा।
- अलप्तगीन इन परिस्थितियों में अपने लगभग 800 वफादार सैनिकों के साथ अफगान प्रदेश के गज़नी नगर में बस गया और यहाँ स्वतंत्र गज़नवी वंश की स्थापना की। अलप्तगीन की मृत्यु के बाद उसका पुत्र इस्हाक और उसके बाद बलक्तगीन गद्दी पर बैठा।
- बलक्तगीन की मृत्यु के बाद पीराई ने गज़नी पर अधिकार कर लिया पर वह एक अयोग्य शासक था, जिसे हटाकर सुबुक्तगीन गद्दी पर बैठा।

सुबुक्तगीन

- सुबुक्तगीन प्रारंभ में अलप्तगीन का गुलाम था। गुलाम की प्रतिभा से प्रभावित होकर उसने उसे अपना दामाद बना लिया और 'अमीर-उल-उमरा' की उपाधि से सम्मानित किया।
- सुबुक्तगीन एक योग्य तथा महत्त्वाकांक्षी शासक सिद्ध हुआ। उसने अपनी शक्ति को बढ़ाया और साथ ही राज्य का विस्तार भी शुरू कर दिया।
- सुबुक्तगीन ही प्रथम तुर्की था, जिसने हिंदूशाही शासक जयपाल को पराजित किया।
- सुबुक्तगीन के देहांत के बाद उसका पुत्र एवं उत्तराधिकारी महमूद गज़नवी (998–1030 ई.) गज़नी की गद्दी पर बैठा।
- पिता की मृत्यु के बाद महमूद गज़नवी के पास एक विशाल और सुसंगठित साम्राज्य था। इसमें कोई संदेह नहीं कि सुबुक्तगीन एक वीर और गुणवान शासक था। उसने अपने राज्य का शासन 20 वर्षों तक विवेक, सुनीति और उदारता के साथ किया।
- भारत पर आक्रमण करने वाला प्रथम तुर्क (मुस्लिम) शासक सुबुक्तगीन ही था।

महमूद गज़नवी *(998–1030 ई.)*

- सुबुक्तगीन की मृत्यु के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र महमूद गज़नवी 998 ई. में शासक बना। राज्यारोहण के समय उसकी आयु मात्र 27 वर्ष की थी। महमूद गज़नवी ने 1000 ई. से 1027 ई. तक भारत में कुल 17 बार आक्रमण किया। उसके आक्रमण का मुख्य उद्देश्य भारत की संपत्ति को लूटना था।
- महमूद ने 1000 ई. में भारत पर आक्रमण शुरू किये तथा सीमावर्ती क्षेत्रों के दुर्गों/किलों को जीता। तत्पश्चात् 1001 ई. में हिंदुशाही शासक जयपाल को पेशावर के निकट पराजित किया। महमूद ने धन लेकर जयपाल को छोड़ दिया परंतु अपमानित महसूस करते हुए जयपाल ने अपने पुत्र आनंदपाल को राज्य सौंपकर आत्महत्या कर ली।
- महमूद का महत्त्वपूर्ण आक्रमण मुल्तान पर हुआ तथा रास्ते में भेरा के निकट जयपाल के पुत्र आनंदपाल को पराजित किया और 1006 ई. में मुल्तान पर विजय प्राप्त की।
- 1008 ई. में महमूद ने पुनः मुल्तान पर आक्रमण किया और उसे अपने राज्य में मिला लिया।
- 1009 ई. में हिंदुशाही राजा आनंदपाल से बैहंद के निकट महमूद का युद्ध हुआ परंतु आनंदपाल पराजित हुआ और सिंध से नगरकोट तक महमूद का आधिपत्य स्थापित हो गया।
- 1014 ई. में महमूद ने थानेश्वर पर आक्रमण किया। दिल्ली के राजा ने पड़ोसी राजाओं के साथ मिलकर महमूद को रोकने का प्रयत्न किया, परंतु विफल रहे।
- 1018 ई. में महमूद ने कन्नौज क्षेत्र पर आक्रमण किया। वहाँ गुर्जर-प्रतिहार शासक के प्रतिनिधि राज्यपाल का शासन था। मार्ग में बरन (बुलंदशहर) के राजा हरदत्त ने आत्मसमर्पण किया तथा मथुरा

17 दिल्ली सल्तनत (1206–1526 ई.)
[Delhi Sultanate (1206-1526 AD.)]

ममलूक वंश (1206-1290 ई.) Mamluk Dynasty (1206-1290 AD.)

भूमिका

तुर्की आक्रमणों के पश्चात् भारत में दिल्ली सल्तनत की स्थापना हुई, जिसके अंतर्गत अलग-अलग शासकों ने शासनभार संभाला। इस क्रम में सर्वप्रथम कुतुबुद्दीन ऐबक का नाम आता है, जिसने 'ममलूक वंश' की नींव रखी। आरंभ में इसे 'दास वंश' भी कहा जाता था। किंतु दास वंश के नाम पर कई इतिहासविदों ने आपत्ति व्यक्त की। इसका अंतर्निहित कारण 'दास' और 'ममलूक' शब्दों के सटीक निर्धारण की वजह से था। दरअसल, 'ममलूक' और 'दास' में पारिभाषिक तौर पर एक अंतर था। 'दास' शब्द का अभिप्राय 'जन्मजात दास' माना जाता था जबकि 'ममलूक' शब्द का अभिप्राय 'स्वतंत्र माता-पिता की संतान था। अंतत: हबीबुल्लाह द्वारा प्रस्तावित 'ममलूक वंश' ही सर्वाधिक मान्य हुआ।

कुछ इतिहासकारों ने इस वंश को 'इल्बरी वंश' की संज्ञा दी। किंतु यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि सभी शासक इल्बरी वंश से संबंधित नहीं थे। मसलन, कुतुबुद्दीन ऐबक इल्बरी तुर्क नहीं था। अत: इस वंश को इल्बरी वंश की संज्ञा देना भी अनुचित होगा। वस्तुत: 1206 से 1290 ई. तक भारत पर शासन करने वाले शासकों को आमतौर पर 'ममलूक' नाम से ही जाना जाता है। इनका विवरण नीचे दिया जा रहा है–

कुतुबुद्दीन ऐबक (1206–1210 ई.)

- मुहम्मद गौरी की मृत्यु के पश्चात् ऐबक को सिंध और मुल्तान छोड़कर मुहम्मद गौरी द्वारा विजित उत्तर भारत का संपूर्ण क्षेत्र (सियालकोट, लाहौर, अजमेर, झाँसी, दिल्ली, मेरठ, कोल (अलीगढ़), कन्नौज, बनारस, बिहार तथा लखनौती के क्षेत्र आदि) प्राप्त हुआ था।
- कुतुबुद्दीन ऐबक ने उत्तराधिकार युद्ध की चुनौतियों का सामना अपनी कुशल वैवाहिक नीति से किया। उसने मुहम्मद गौरी के एक अन्य विश्वस्त अधिकारी ताजुद्दीन यलदोज की पुत्री से विवाह किया। उसने अपनी बहन का विवाह नासिरुद्दीन कुबाचा से किया, जो सिंध का प्रभावी अधिकारी था। उसने अपनी पुत्री का विवाह तुर्की दास अधिकारी इल्तुतमिश से किया।
- कुतुबुद्दीन ऐबक ने गौरी की मृत्यु के बाद शासन अपने हाथ में ले लिया, लेकिन उसने न तो अपने नाम से सिक्के चलवाए और न ही ख़ुत्बा पढ़वाया।
- कुतुबुद्दीन ऐबक ने 'मलिक' और 'सिपहसालार' की उपाधियों से शासन प्रारंभ किया तथा 'सुल्तान' की पदवी धारण नहीं की।
- कुतुबुद्दीन ऐबक ने लाहौर से शासन का संचालन किया तथा लाहौर ही उसकी राजधानी थी।
- 1210 ई. में लाहौर में चौगान (पोलो) खेलते समय घोड़े से अचानक गिर जाने के कारण उसकी मृत्यु हो गई। उसके बाद आरामशाह लगभग एक साल के लिये राजगद्दी पर बैठा।

कुतुबुद्दीन ऐबक के व्यक्तित्व का मूल्यांकन

- कुतुबुद्दीन ऐबक एक योग्य सेनापति, अचूक तीरंदाज, साहसी तथा प्रतिभाशाली व्यक्ति था। एक गुलाम की अवस्था से उठकर सुल्तान के पद पर पहुँचना उसकी योग्यता तथा प्रतिभा का ही परिचय था।
- ऐबक ने साम्राज्य विस्तार से अधिक ध्यान राज्य के सुदृढ़ीकरण पर दिया। यलदोज एवं कुबाचा के प्रति उसकी नीति राजनीतिक कुशलता का प्रमाण है।
- कुतुबुद्दीन एक उदार शासक था। अत: उसकी उदारता के कारण उसे 'लाखबख़्श' (लाखों का दान करने वाला) कहा गया।
- सैन्य योग्यता के साथ-साथ, वह साहित्य और कला-प्रेमी भी था। उसने दो मस्जिद 'कुव्वत-उल-इस्लाम' (महरौली, दिल्ली) और 'अढ़ाई दिन का झोंपड़ा' (अजमेर) का निर्माण करवाया। उसने प्रसिद्ध सूफी संत 'ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी' की स्मृति में दिल्ली में कुतुबमीनार की नींव रखी, जिसे बाद में इल्तुतमिश ने पूरा करवाया।

आरामशाह (1210 ई.)

- कुतुबुद्दीन ऐबक की मृत्यु के बाद सैनिक वर्ग में असंतोष, साधारण जनता में अशांति व उपद्रव रोकने के लिये लाहौर के सरदारों ने कुतुबुद्दीन ऐबक के पुत्र आरामशाह को गद्दी पर बैठाया। (हालाँकि आरामशाह के ऐबक का पुत्र होने के संबंध में विवाद है।)
- दुर्भाग्यवश आरामशाह एक कमज़ोर एवं अयोग्य शासक सिद्ध हुआ। अत: दिल्ली के लोगों ने उसे अपना शासक स्वीकार करने से इनकार कर दिया।
- आरामशाह को सत्ता से हटाने के उद्देश्य से बदायूँ के प्रांताध्यक्ष इल्तुतमिश को एक निमंत्रण-पत्र भेजा गया।
- इल्तुतमिश ने निमंत्रण स्वीकार किया और दिल्ली के निकट जड (Jud) नामक स्थान पर आरामशाह को परास्त किया। आरामशाह के 8 माह के शासन के बाद इल्तुतमिश ने दिल्ली की सत्ता पर अधिकार कर लिया।

18 सूफी एवं भक्ति आंदोलन
(Sufi and Bhakti Movement)

संतों तथा सूफियों के प्रयासों से जो भक्ति एवं सूफी आंदोलन आरंभ हुए उनसे मध्ययुगीन भारत के सामाजिक एवं धार्मिक जीवन में एक नवीन शक्ति एवं गतिशीलता का संचार हुआ। भक्ति आंदोलन के परिणामों में मुख्य रूप से भक्ति के प्रति आस्था का विकास, लोकभाषाओं में साहित्य रचना का आरंभ, इस्लाम के साथ सहयोग के परिणामस्वरूप सहिष्णुता की भावना का विकास हुआ जिसकी वजह से जाति व्यवस्था के बंधनों में शिथिलता आई और विचार तथा कर्म दोनों स्तरों पर समाज का उन्नयन हुआ। जहाँ तक सूफीवाद का संबंध है, उसने उन तत्त्वों (सृजनात्मक, सामाजिक और बौद्धिक शक्तियों) को अपनी ओर आकृष्ट किया जो सामाजिक और सांस्कृतिक क्रांति के वाहक के रूप में उभरकर सामने आये। तुर्की आधिपत्य के काल में जब देश का जनजीवन घुटन का अनुभव कर रहा था तब सूफी खानकाह ने सामाजिक संदेश फैलाने एवं सुधारवादी राजनीति का उन्माद पैदा करने का काम किया।

सूफी आंदोलन

- सूफी मत, इस्लाम धर्म में उदार, रहस्यवादी और संश्लेषणात्मक प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करने वाली विचारधारा हैं सूफी शब्द की उत्पत्ति के संबंध में इतिहासकारों में मतभेद है। विभिन्न विद्वानों ने 'सूफी' शब्द की व्युत्पत्तिमूलक व्याख्या भिन्न-भिन्न दृष्टियों से की है।
- सबसे प्रसिद्ध मत के अनुसार सूफी शब्द 'सूफ' से विकसित हुआ है जिसका तात्पर्य है- ऊन या ऊनी कपड़ा। सूफी साधक आरंभिक समय में भेड़ या बकरी की ऊन से बने कपड़े धारण किया करते थे। संभवत: इसीलिये उन्हें सूफी कह दिया गया।
- दूसरे मत के अनुसार, सूफी शब्द की उत्पत्ति 'सफा' से हुई है जिसका अर्थ है- पवित्रता या शुद्धि की अवस्था। इस व्याख्या के अनुसार आचरण की पवित्रता और शुद्धता के कारण ही इन लोगों को सूफी कहा गया।
- कुछ विद्वानों ने सफा शब्द की एक और व्याख्या की। उनके अनुसार मोहम्मद पैगम्बर द्वारा मदीना की मस्जिद के बाहर 'सफा' अर्थात् मक्का की एक पहाड़ी पर जिन लोगों ने शरण ली, वही आगे चलकर सूफी कहलाए।
- वस्तुत: इस विवाद का कोई भी सर्वमान्य निर्णय करना कठिन है। ज़्यादा संभावना इस बात की है कि सूफी शब्द की उत्पत्ति 'सूफ' अर्थात् 'ऊन' से ही हुई होगी क्योंकि प्रथम दृष्टया बाह्य विशेषताएँ ही समाज को नज़र आती हैं। आगे चलकर बाकी व्याख्याएँ क्रमश: विकसित होती गई होंगी। कुछ भी हो, आजकल इसका अर्थ 'तसव्वुफ़' को मानने वाले साधक ('इश्क मजाज़ी' और 'इश्क हकीकी' के सिद्धांत को मानते हुए सभी धर्मों से प्रेम करना) से ही लिया जाता है।

भारत में प्रमुख सूफी सिलसिले

चिश्ती सिलसिला

- भारत में चिश्ती संप्रदाय सबसे अधिक लोकप्रिय व प्रसिद्ध हुआ।
- भारत में चिश्ती परंपरा के प्रथम संत शेख उस्मान के शिष्य ख़्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती थे। मोईनुद्दीन चिश्ती 1192 ई. में मुहम्मद गौरी के साथ भारत आए थे। इन्होंने 'चिश्तिया परंपरा' की नींव रखी थी।
- मोईनुद्दीन चिश्ती ने अजमेर को अपना केंद्र (खानकाह) बनाया। उनकी दरगाह अजमेर में स्थित है और 'ख़्वाजा साहब' के नाम से प्रसिद्ध है।
- वस्तुत: बाबा फरीद (गंज-ए-शकर) के कारण चिश्ती सिलसिले को भारत में अत्यधिक प्रसिद्धि मिली। इनकी प्रसिद्धि के प्रभाव से सिख गुरु अर्जुन देव ने 'गुरुग्रंथ साहिब' में इनके कथनों को संकलित कराया है।
- बाबा फरीद, ख़्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी के शिष्य थे और ख़्वाजा बख्तियार, मोईनुद्दीन चिश्ती के प्रमुख शिष्य थे।
- चिश्ती संतों में सबसे लोकप्रिय संत निज़ामुद्दीन औलिया, बाबा फरीद के शिष्य थे। माना जाता है कि निज़ामुद्दीन औलिया ने दिल्ली के सात सुल्तानों का शासनकाल देखा था, किंतु वे किसी भी सुल्तान के दरबार में उपस्थित नहीं हुए।
- निज़ामुद्दीन औलिया के प्रिय शिष्य अमीर खुसरो थे।
- चिश्ती संत नासिरुद्दीन महमूद 'चिराग-ए-दिल्ली' अर्थात् 'दिल्ली के चिराग' नाम से अधिक प्रसिद्ध हुए।
- दक्षिण भारत में चिश्ती सिलसिले को प्रारंभ करने का श्रेय निजामुद्दीन औलिया के शिष्य 'शेख बुरहानुद्दीन गरीब' को जाता है। इन्होंने दौलताबाद को अपने प्रचार-प्रसार का केंद्र बनाया।
- मुगल शासक अकबर फतेहपुर सीकरी के चिश्ती संत शेख सलीम चिश्ती के प्रति आदर भाव रखता था तथा अपने पुत्र जहाँगीर को उनका ही आशीर्वाद समझता था। 'फतेहपुर सीकरी' में अकबर ने शेख सलीम चिश्ती के मकबरे का निर्माण कराया।

चिश्ती सिलसिले की विशेषता

- चिश्ती सिलसिले के संत प्रवृत्ति से अत्यंत उदार थे। उन्होंने ऊँच-नीच, धर्म-जाति और जन्म के भेदभाव को त्यागकर मानव सेवा व प्रेम को प्रमुखता दी।
- चिश्ती सिलसिले से संबंधित संत सुल्तान या अमीरों से कोई वास्ता नहीं रखते थे। एक बार अलाउद्दीन ख़िलजी ने निज़ामुद्दीन औलिया

19 मुगल काल
(Mughal Period)

बाबर और हुमायूँ (1526-1556 ई.) Babur and Humayun (1526-1556 AD.)

मुगल वंश की स्थापना

तैमूर ने मध्य एशिया के क्षेत्र में एक विशाल साम्राज्य का निर्माण चौदहवीं सदी में किया था, किंतु उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका साम्राज्य विघटित हो गया और उसमें अनेक छोटी-छोटी शक्तियों का उदय हुआ। तैमूर वंशजों में बाबर भी एक था, जो मुगल साम्राज्य का संस्थापक बना। बाबर का पैतृक राज्य 'फरगना' था। मध्य एशिया के उज़्बेक शासकों ने लंबे संघर्ष के बाद बाबर को फरगना से निकाल दिया। बाबर ने 1504 ई. में काबुल का राज्य जीत लिया और कुछ समय बाद कंधार और समरकंद की विजय में भी सफल हुआ, हालाँकि ये दोनों ही विजय क्षणिक सिद्ध हुई। तत्पश्चात् बाबर ने दक्षिण-पूर्व की ओर अर्थात् भारत की ओर अपना ध्यान आकर्षित किया।

बाबर *(1526-1530 ई.)*

- भारत में मुगल सत्ता का संस्थापक बाबर था। बाबर का वास्तविक नाम 'जहीरुद्दीन मुहम्मद' था। तुर्की भाषा में बाबर का अर्थ 'बाघ' होता है। अत: जहीरुद्दीन मुहम्मद अपने पराक्रम एवं निर्भीकता के कारण 'बाबर' कहलाया तथा बाद में उसका यही नाम प्रचलित हो गया।
- बाबर के पिता तैमूर वंशज और माता मंगोल वंशज थी। इस प्रकार उसमें तुर्कों एवं मंगोलों दोनों के रक्त का मिश्रण था।
- बाबर का जन्म 14 फरवरी, 1483 ई. को फरगना के एक छोटे से राज्य में हुआ था, जो अब उज़्बेकिस्तान में है।
- बाबर ने जिस नवीन वंश की नींव डाली, वह तुर्की नस्ल का 'चगताई' वंश था। जिसका नाम चंगेज खाँ के द्वितीय पुत्र के नाम पर पड़ा, परंतु आमतौर पर उसे 'मुगल वंश' पुकारा गया है।
- बाबर अपने पिता की मृत्यु के बाद 11 वर्ष की अल्पायु में 1494 ई. में फरगना की गद्दी पर बैठा।
- बाबर ने अपने फरगना के शासनकाल में 1501 ई. में समरकंद पर अधिकार किया, जो मात्र आठ महीने तक ही उसके कब्जे में रहा। 1504 ई. में काबुल विजय के उपरांत बाबर का काबुल और गज़नी पर अधिकार हो गया। 1507 ई. में बाबर ने 'पादशाह' (बादशाह) की उपाधि धारण की। पादशाह की उपाधि धारण करने से पूर्व बाबर 'मिर्ज़ा' की पैतृक उपाधि धारण करता था।

बाबर के भारत पर आक्रमण का कारण

- बाबर का भारत पर आक्रमण मध्य एशिया में शक्तिशाली उज़्बेकों से बार-बार पराजय, शक्तिशाली सफवी तथा उस्मानी वंश के भय का प्रतिफल था।
- बाबर की भारत-विजय की आकांक्षा का एक कारण यह भी था कि काबुल से बहुत मामूली आमदनी होती थी, जिससे सेना की ज़रूरतें पूरी नहीं होती थी। इसीलिये धन की लालसा के कारण उसने भारत का रुख़ किया।
- बाबर के भारत पर आक्रमण का एक अन्य कारण भारत में अवसर की उपलब्धता भी था। बाबर के आक्रमण से पूर्व भारत परस्पर प्रतिद्वंद्विता रखने वाले अनेक राज्यों में विभक्त था। देश में कोई सार्वभौमिक सत्ता नहीं थी और प्रभुत्व के लिये संघर्ष चल रहा था। भारत किसी शत्रु का, जो कि अपने लिये साम्राज्य बनाने का साहस और महत्त्वाकांक्षा रखता हो संगठित रूप से सामना करने की स्थिति में नहीं था।

बाबर का भारत पर आक्रमण

- बाबर का भारत के विरुद्ध किया गया प्रथम अभियान 1518-1519 ई. में 'युसूफजाई' जाति के विरुद्ध था। इस अभियान में बाबर ने 'बाजौर' और 'भेरा/भीरा' को अपने अधिकार में किया।
- बाबर ने अपनी आत्मकथा (बाबरनामा) में लिखा है कि इस किले (बाजौर) को जीतने में उसने बारूद एवं तोपों का प्रयोग किया था।
- 1519 ई. में बाबर ने खैबर दर्रे (पेशावर) को पार किया। किंतु बाबर जल्द ही पेशावर से वापस लौट गया।
- 1520 ई. में बाबर ने 'बाजौर और भेरा/भीरा' को पुन: जीता, साथ ही 'स्यालकोट' एवं 'सैय्यदपुर' को भी अपने अधिकार में कर लिया।
- 1524 ई. में बाबर के पेशावर अभियान के समय, बाबर को इब्राहिम लोदी व दौलत खाँ के मध्य मतभेद की ख़बर मिली, जिसके कारण दौलत खाँ (जो उस समय पंजाब का गवर्नर था) ने पुत्र दिलावर खाँ को बाबर के पास भारत पर आक्रमण करने के लिये संदेश भिजवाया। संभवत: इसी समय राणा सांगा ने भी बाबर को भारत पर आक्रमण करने के लिये निमंत्रण भेजा था।

पानीपत का प्रथम युद्ध (अप्रैल 1526 ई.)

- पानीपत युद्ध के समय इब्राहिम लोदी दिल्ली का सुल्तान था।

20 मराठा साम्राज्य
(Maratha Empire)

भूमिका

मुगल शासनकाल के उत्तरवर्ती दौर में वर्तमान महाराष्ट्र और उसके आसपास के क्षेत्र में मराठों के रूप में एक सशक्त क्षेत्रीय शक्ति का उदय हो रहा था। उनके इस उत्थान के पीछे तात्कालिक परिस्थितियाँ और कुछ अन्य कारक उत्तरदायी थे। ध्यातव्य है कि भक्ति आंदोलन के दौर में मराठा क्षेत्र की उल्लेखनीय भागीदारी हो रही थी। तत्कालीन मराठा संतों और कवियों ने जनसामान्य में हिंदू गौरव एवं एकता की भावना को जाग्रत किया। विषम भौगोलिक क्षेत्रों में जीवन व्यतीत करने से मराठे बचपन से ही बेहद जुझारू, साहसी और युद्ध कौशल में पारंगत हो जाते थे। सामाजिक दृष्टि से समाज में सद्भाव व्याप्त था जो क्षेत्रीय एकता के निर्माण का कारण बना। औरंगज़ेब की हिंदू विरोधी नीतियों ने मराठों के उत्थान में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन मराठा शासकों में छत्रपति शिवाजी का नाम अग्रणीय है जिनके दौर में मराठा शक्ति ने नई ऊँचाइयाँ हासिल कीं।

शिवाजी

- शिवाजी के पिता का नाम शाहजी भोंसले था। वे पहले अहमदनगर की सेवा में थे। किंतु, शाहजहाँ द्वारा 1633 ई. में अहमदनगर की विजय के पश्चात् बीजापुर की सेवा में चले गये और उन्होंने अपने अधीन आने वाली पूना की जागीर शिवाजी को सौंप दी।
- शिवाजी की माता का नाम जीजाबाई था तथा उनके संरक्षक दादोजी कोंडदेव थे।
- शिवाजी के आध्यात्मिक गुरु रामदास थे। उनके विचारों के चलते शिवाजी के व्यक्तित्व को व्यापक दृष्टिकोण प्राप्त हुआ।
- दादोजी कोंडदेव की मृत्यु के बाद शिवाजी ने पूना की जागीर का कार्यभार स्वयं संभाला।
- 1646 ई. में शिवाजी ने पूना के पास स्थित तोरण के किले और 1648 ई. में पुरंदर के किले को जीता।
- 1656 ई. में मराठा सरदार चंद्रराव मोर से जावली का किला जीता।
- इस समय मुगलों का बीजापुर से संघर्ष चल रहा था। अत: शिवाजी ने मुगलों के साथ मैत्री करने का प्रयास किया, किंतु औरंगज़ेब ने इसमें रुचि नहीं दिखाई। बीजापुर से संधि करने के पश्चात् औरंगज़ेब ने बीजापुर को शिवाजी की अधीन आने वाले क्षेत्रों को वापस लेने की सलाह दी।
- बीजापुर शासक ने अपने सेनापति अफज़ल खाँ को शिवाजी को कैद करने या मार डालने के लिये भेजा। किंतु, शिवाजी ने चतुराई से उसकी हत्या कर दी और बीजापुर के कई अन्य क्षेत्रों को भी जीत लिया जैसे– 'पन्हाला का किला', 'कोल्हापुर' और 'उत्तरी कोंकण'।
- इसके पश्चात् औरंगज़ेब ने शिवाजी के अधीन आने वाले उन क्षेत्रों को वापस लेने का निश्चय किया जो अहमदनगर की संधि के तहत बीजापुर को दे दिये गए थे। इसके लिये मुगल गवर्नर शाइस्ता खाँ को भेजा गया। प्रारंभिक रूप से शाइस्ता खाँ ने पूना, कल्याण और चाकन इत्यादि के किले पर अधिकार कर लिया तथा शिवाजी को वहाँ से हटने के लिये विवश किया।
- शिवाजी ने शाइस्ता खाँ के शिविर पर छापामार हमला किया तथा शाइस्ता खाँ को घायल कर दिया।
- इसके पश्चात् औरंगज़ेब ने शाइस्ता खाँ को वापस बुला लिया और आमेर के जयसिंह को शिवाजी से निपटने का दायित्व सौंपा। शाइस्ता खाँ को बंगाल का गवर्नर बनाकर भेज दिया गया।
- जयसिंह ने शिवाजी से निपटने के लिये एक नई नीति तैयार की, जिसके तहत शिवाजी को चारों तरफ से घेरा जाना था। इसके लिये जयसिंह ने बीजापुर के साथ समझौता करने का प्रयास किया तथा बीजापुर ने अपनी सेना की एक टुकड़ी को जयसिंह की तरफ से भेजा।
- 1665 में शिवाजी को पुरंदर में घेर लिया गया।
- विवश होकर शिवाजी को 1665 में पुरंदर की संधि करनी पड़ी।

संधि के तहत प्रावधान

- शिवाजी को अपने 23 किले, जिनकी आय 4 लाख हूण प्रति वर्ष थी, मुगलों को सौंपने थे। इसके अतिरिक्त 12 किले, जिसकी वार्षिक आमदनी 1 लाख हूण थी, शिवाजी को अपने पास रखने थे।
- औरंगज़ेब द्वारा शिवाजी के पुत्र शंभाजी को मुगल दरबार में भेजा जाना था। उसे 5 हज़ार का मनसब प्रदान किया गया।
- इसके पश्चात् बीजापुर के विरुद्ध अभियान प्रारंभ हुआ, किंतु औरंगज़ेब का सही से समर्थन न मिल पाने की वजह से इस अभियान में विशेष सफलता नहीं प्राप्त हुई।
- इसके पश्चात् जयसिंह ने शिवाजी को व्यक्तिगत रूप से मिलने के लिये आगरा भेजा, किंतु वहाँ औरंगज़ेब से विवाद हो गया और शिवाजी को कैद कर लिया गया।
- 1666 में वे औरंगज़ेब की कैद से फरार हो गए।
- इसके बाद शिवाजी ने पुन: मुगलों के किले जीतने का फैसला किया। 1670 में उन्होंने पुन: सूरत को लूटा।
- शिवाजी ने 1674 में अपना राज्याभिषेक रायगढ़ के किले में किया। राज्याभिषेक की प्रक्रिया काशी के पंडित गंगाभट्ट द्वारा संपन्न की गई। इस अवसर पर शिवाजी ने 'छत्रपति', 'हैंदव

21 विविध
(Miscellaneous)

विजयनगर आने वाले प्रमुख विदेशी यात्री

यात्री	देश	शासक
निकोलो डी कॉण्टी	इटली	देवराय-I
अब्दुर्रज़्ज़ाक	फारस	देवराय-II
नूनिज	पुर्तगाल	अच्युतराय
डोमिंगो पायस	पुर्तगाल	कृष्णदेव राय
बारबोसा	पुर्तगाल	कृष्णदेव राय

विजयनगर साम्राज्य के प्रमुख पदाधिकारी

नायक	सैनिक भू-सामंत
दंडनायक	सैनिक विभाग का प्रमुख तथा सेनापति।
रायसम्	सचिव
कर्णिकम्	लेखाधिकारी
अमर-नायक	सैन्य मदद देने वाला सामंतों का वर्ग
आयंगर	वंशानुगत ग्रामीण अधिकारी
पलाइयागार	ज़मींदार
स्थानिक	मंदिरों की व्यवस्था करने वाला अधिकारी
मुद्राकर्ता	शाही मुद्रा रखने वाला अधिकारी
तलस	ग्राम का रखवाला (चौकीदार)
गौड	नगर प्रशासक
परुपत्यगार	राजा या गवर्नर का प्रतिनिधि

सल्तनतकालीन स्थापत्य कला

इमारतें	निर्माणकर्ता
कुव्वत-उल-इस्लाम मस्जिद, मेहरौली (दिल्ली)	कुतुबुद्दीन ऐबक
कुतुबमीनार, मेहरौली (दिल्ली)	कुतुबुद्दीन ऐबक व इल्तुतमिश
अढ़ाई दिन का झोंपड़ा (अजमेर)	कुतुबुद्दीन ऐबक
सुल्तानगढ़ी (दिल्ली)	इल्तुतमिश
जामी मस्जिद, बदायूँ	इल्तुतमिश
अलाई दरवाज़ा (दिल्ली)	अलाउद्दीन ख़िलजी
मोठ की मस्जिद (दिल्ली)	मियाँ भोइया (भुआँ)
कोटला फिरोज़शाह	फिरोज़शाह तुगलक

भक्ति आंदोलन के प्रमुख प्रवर्तक और उनके सिद्धांत

प्रवर्तक	सिद्धांत
शंकराचार्य	अद्वैतवाद
रामानुजाचार्य	विशिष्टाद्वैतवाद
निंबार्काचार्य	द्वैताद्वैतवाद या भेदाभेदवाद
वल्लभाचार्य	शुद्धाद्वैतवाद
मध्वाचार्य	द्वैतवाद
रामानंद	रामभक्ति
नामदेव	विठोबा भक्ति (वारकरी संप्रदाय)
सूरदास	कृष्ण भक्ति
दादू	दादू पंथ
तुकाराम	वारकरी पंथ
चैतन्य	अचिंत्यभेदाभेद

भक्ति आंदोलन के संत एवं उनके संप्रदाय

संत	संप्रदाय
रामानुजाचार्य	श्री संप्रदाय
मध्वाचार्य	ब्रह्म संप्रदाय
वल्लभाचार्य	रुद्र संप्रदाय
गोविंद प्रभु	महानुभाव पंथ
निंबार्क	सनक संप्रदाय
स्वामी हरिदास	सखी संप्रदाय
चंडीदास	बाऊल संप्रदाय
नित्यानंद गोस्वामी	चैतन्य पंथ
दादूदयाल	दादू पंथ
रामानंद	रामवत संप्रदाय
निरंजन	निरंजनी संप्रदाय
शंकर देव	वैष्णव संप्रदाय

मुगलकालीन प्रमुख अनुवादित पुस्तकें

अनुवादित पुस्तक	अनुवादित भाषा	अनुवादक-लेखक
महाभारत (रज़्मनामा)	फारसी	बदायूँनी, नकीब खाँ, मुल्लाशेरी
रामायण	फारसी	बदायूँनी
राजतरंगिणी	फारसी	शाह मुहम्मद शाबादी
हितोपदेश	फारसी	ताजुल माली

खंड–3

आधुनिक भारत

22 18वीं शताब्दी में स्थापित नवीन स्वायत्त राज्य (New Autonomous State Established in the 18th Century)

भूमिका

1707 में औरंगज़ेब की मृत्यु के पश्चात् उत्तर मुगल काल में मुगल बादशाह मात्र प्रतीकात्मक रह गए और उनकी सत्ता की बागडोर ईरानी, तूरानी गुट और हिंदुस्तानी मूल के अमीर सैय्यद बंधुओं के पास आ गई। 18वीं शताब्दी के प्रारंभ से ही वैभवशाली मुगल साम्राज्य का पतन तेज़ी से होने लगा और मुगल साम्राज्य के इन्हीं अवशेषों पर अनेक क्षेत्रीय राजनीतिक शक्तियों का प्रादुर्भाव हुआ, जिससे कई स्वतंत्र राज्य अस्तित्व में आए। इन स्वतंत्र राज्यों के विवरण निम्नलिखित हैं-

हैदराबाद

- हैदराबाद के स्वतंत्र राज्य (आसफ़जाही वंश) का संस्थापक निज़ाम-उल-मुल्क (चिनकिलिच खाँ) था। निज़ाम-उल-मुल्क तूरानी गुट का था। उसने सैय्यद बंधुओं के पतन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।
- निज़ाम-उल-मुल्क, मुगल बादशाह मुहम्मद शाह द्वारा दक्कन में नियुक्त सूबेदार था। वर्ष 1720 से 1722 के बीच दक्कन में उसने अपनी स्थिति सुदृढ़ की तथा 1724 में उसने स्वतंत्र राज्य हैदराबाद की स्थापना की।
- निज़ाम-उल-मुल्क ने केंद्रीय सरकार से अपनी स्वतंत्रता की खुलेआम घोषणा कभी नहीं की, मगर व्यवहार में स्वतंत्र शासक के रूप में कार्य किया।
- निज़ाम-उल-मुल्क ने हिंदुओं के प्रति उदार नीति अपनाई, उसने एक हिंदू पूरनचंद को अपना दीवान नियुक्त किया।
- निज़ाम-उल-मुल्क ने दक्कन में जागीरदारी प्रथा को अपनाया तथा राजस्व व्यवस्था में निहित भ्रष्टाचार को समाप्त करने का प्रयास किया।
- 1724 में सकूरखेड़ा के युद्ध में निज़ाम-उल-मुल्क ने मुगल सूबेदार मुबारिज खाँ को पराजित किया। तत्पश्चात् मुगल बादशाह ने निज़ाम-उल-मुल्क को 'दक्कन का वायसराय' नियुक्त कर दिया और उसे आसफ़जाह की उपाधि प्रदान की।
- 1748 में निज़ाम-उल-मुल्क की मृत्यु के पश्चात् हैदराबाद आंतरिक संघर्ष तथा कर्नाटक के प्रश्न पर अंग्रेज़ों एवं फ्राँसीसियों की कूटनीति का शिकार बना।

कर्नाटक

- कर्नाटक, मुगल दक्कन का एक सूबा था। कर्नाटक के नायब सूबेदार को कर्नाटक का नवाब कहा जाता था।
- दिल्ली की सरकार से स्वतंत्र होकर सआदतउल्ला खाँ ने 'अर्काट' को अपनी राजधानी बनाया।
- सआदतउल्ला खाँ के बाद उत्तराधिकार के संघर्षों को लेकर कर्नाटक की स्थिति बिगड़ती गई। फलस्वरूप कर्नाटक के उत्तराधिकार का प्रश्न अंग्रेज़ों और फ्राँसीसियों के मध्य राजनीतिक हस्तक्षेप का कारण बना।
- अंततः कर्नाटक के नवाब मुहम्मद अली और उनके उत्तराधिकारी पर ब्रिटिश गवर्नर जनरल लॉर्ड वेलेज़ली ने षड्यंत्रात्मक पत्राचार का आरोप लगाकर राजगद्दी का अधिकार छीन लिया।

बंगाल

- स्वतंत्र बंगाल राज्य की नींव डालने का श्रेय मुर्शिद कुली खाँ को दिया जाता है। 1700 में मुगल सम्राट औरंगज़ेब द्वारा मुर्शिद कुली खाँ को बंगाल का दीवान नियुक्त किया गया था। इस समय बंगाल का सूबेदार अजीमुशान था, जो राजदरबार से संबंधित होने के कारण प्रायः दिल्ली में रहता था। अतः बंगाल की वास्तविक शक्ति मुर्शिद कुली खाँ के पास थी। मुगल सम्राट फर्रुखसियर ने मुर्शिद कुली खाँ को 1717 में बंगाल का सूबेदार नियुक्त किया, जिसने आगे चलकर मुगल साम्राज्य की कमज़ोर स्थिति का फायदा उठाकर स्वतंत्र बंगाल राज्य की नींव रखी।
- मुर्शिद कुली खाँ के शासन के दौरान केवल तीन विद्रोह हुए। पहला विद्रोह सीताराम राय, उदय नारायण और गुलाम मुहम्मद ने किया, दूसरा शुजात खाँ ने तथा तीसरा विद्रोह नजात खाँ का था।
- मुर्शिद कुली खाँ ने बंगाल की राजधानी ढाका के स्थान पर 'मुर्शिदाबाद' को बनाया।
- मुर्शिद कुली खाँ ने राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार करते हुए राज्य की वित्तीय व्यवस्था में नए सिरे से प्रबंध किया। उसने अपने नए भू-राजस्व बंदोबस्त के ज़रिये जागीर भूमि के एक बड़े हिस्से को 'खालसा भूमि' (प्रत्यक्ष रूप से बादशाह के नियंत्रण में रहने वाली भूमि) में तब्दील कर दिया तथा ठेके पर भू-राजस्व वसूली की नई प्रणाली 'इजारेदारी व्यवस्था' की शुरुआत की।
- मुर्शिद कुली खाँ ने गरीब किसानों को कृषि विकास तथा भू-राजस्व देने में सक्षम बनाने हेतु 'तकावी ऋण' प्रदान किया।
- 1727 में मुर्शिद कुली खाँ की मृत्यु के पश्चात् उसका दामाद शुजाउद्दीन (1727-1739) बंगाल का नवाब बना। शुजाउद्दीन के बाद उसका बेटा सरफराज खाँ (1739) बंगाल का नवाब बना।
- 1740 में बिहार के नायब सूबेदार अलीवर्दी खाँ ने सरफराज खाँ को गिरिया (कुछ स्रोतों में घेरिया) के युद्ध में हराकर बंगाल के नवाब का पद हस्तगत कर लिया। इसने तत्कालीन मुगल सम्राट को 2 करोड़ रुपये नज़राना देकर अपने पद की स्वीकृति प्राप्त की।
- मराठों के हमलों से दबाव में आकर अलीवर्दी खाँ ने रघुजी से 1751 में उड़ीसा प्रांत का एक बड़ा भाग और वार्षिक चौथ के रूप में एक निश्चित धनराशि देकर मराठों से संधि की।

23 भारत में यूरोपीयों का आगमन (The Arrival of Europeans in India)

भूमिका

1707 में मुगल बादशाह औरंगज़ेब की मृत्यु के पश्चात् मुगल साम्राज्य की पतनोन्मुखी परिस्थितियों का लाभ उठाकर कई अधीनस्थ राज्यों ने स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर तो लिया, किंतु भारत में ऐसा कोई शक्तिशाली राज्य नहीं था, जो भारत को एक सूत्र में बांध सके। इस कारण भारत में प्रारंभिक व्यापारिक एकाधिकार प्राप्त करने के उद्देश्य से यूरोपीय कंपनियों के बीच क्षेत्रीय राज्यों के सहयोग से एक चतुर्भुजी संघर्ष प्रारंभ हो गया। अंततः इस संघर्ष में अंग्रेज़ों को विजयश्री प्राप्त हुई। कालांतर में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारतीय राज्यों को जीतकर, भारत में अपने उपनिवेश की स्थापना की।

भारत में यूरोपीय कंपनियों का आगमन

- भारत में यूरोपीय कंपनियों का आगमन कोई आकस्मिक घटना नहीं थी। यूरोप के साथ भारत के व्यापारिक संबंध बहुत पुराने (यूनानियों के समय से) थे। मध्यकाल में यूरोप और दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ भारत का व्यापार अनेक मार्गों से चलता था। सवाल उठता है, आखिर ऐसी क्या परिस्थितियाँ बनीं कि यूरोपीयों को एशिया से व्यापार के लिये पुनः नए मार्गों की खोज करनी पड़ी?
- ध्यातव्य है कि जब वर्ष 1453 में उस्मानिया सल्तनत ने एशिया माइनर को जीत लिया और कुस्तुन्तुनिया पर अधिकार कर लिया तो पूर्व और पश्चिम के बीच के पुराने व्यापारिक मार्ग तुर्कों के नियंत्रण में आ गए। इस तरह पूर्वी देशों और यूरोप के बीच पारंपरिक व्यापारिक मार्ग पर अंकुश लग गया। इस प्रकार उत्पन्न परिस्थितियों के कारण पश्चिमी यूरोपीय देशों के व्यापारी भारत और इंडोनेशिया के स्पाइस आइलैंड (मसाले के द्वीप) के लिये नए और अधिक सुरक्षित समुद्री मार्गों की तलाश करने लगे।
- प्रारंभ में यूरोपीयों की मंशा व्यापार में लगे अरबों और वेनिसवासियों के एकाधिकार को तोड़ना, तुर्कों की शत्रुता मोल लेने से बचना और पूर्व के साथ सीधे व्यापार-संबंध स्थापित करने की थी।
- यूरोपीयों के लिये अब नए समुद्री मार्ग खोजना उतना कठिन कार्य नहीं था, क्योंकि 15वीं-16वीं सदी तक यूरोप में पुनर्जागरण व प्रबोधन के परिणामस्वरूप नई भौगोलिक खोजों को केंद्रीय सत्ता द्वारा प्रोत्साहन दिया जा रहा था, साथ ही जहाज़ निर्माण और समुद्री यातायात में प्रगति तथा कुतुबनुमा (दिशा सूचक) का आविष्कार भी हो गया था। फलतः यूरोपीय लोग अब यह कार्य करने में अच्छी तरह समर्थ थे।
- नए समुद्री मार्गों की खोज का पहला कदम पुर्तगाल और स्पेन ने उठाया। इन देशों के नाविकों ने अपनी-अपनी सरकारों की सहायता से भौगोलिक खोजों का एक नया युग प्रारंभ किया।
- इसी पृष्ठभूमि में स्पेन का नाविक कोलंबस 1492 में भारत की खोज में निकला, परंतु वह भटक कर अमेरिका चला गया। इस प्रकार उसने अमेरिका की खोज की। 1498 में पुर्तगाल के नाविक वास्कोडिगामा ने एक नया समुद्री मार्ग खोज निकाला, जिससे वह उत्तमाशा अंतरीप (केप ऑफ गुड होप) का चक्कर काटते हुए भारत के कालीकट तट (केरल) पर पहुँचा। ध्यातव्य है कि उत्तमाशा अंतरीप की खोज बार्थोलोम्यू डियाज़ ने 1488 में की थी।

पुर्तगालियों का आगमन

- सर्वप्रथम 1498 में 'वास्कोडिगामा' नामक पुर्तगाली नाविक उत्तमाशा अंतरीप का चक्कर काटते हुए एक गुजराती व्यापारी अब्दुल मजीद की सहायता से भारत के 'कालीकट' बंदरगाह पर पहुँचा। जहाँ 'कालीकट' के हिंदू शासक (उपाधि-जमोरिन) ने उसका स्वागत किया।
- वास्कोडिगामा ने कालीकट के राजा से व्यापार का अधिकार प्राप्त किया, जिसका अरबी व्यापारियों ने विरोध किया। विरोध का कारण आर्थिक हित था। अंततः वास्कोडिगामा जिस मसालों को लेकर वापस स्वदेश लौटा, वह पूरी यात्रा की कीमत के 60 गुना दामों पर बिका। परिणामतः इस लाभकारी घटना ने पुर्तगाली व्यापारियों को भारत आने के लिये आकर्षित किया।
- ध्यातव्य है कि पूर्व के साथ व्यापार हेतु 'इस्तादो-द-इंडिया' नामक कंपनी की स्थापना की गई। वास्तव में पोप अलैक्जेंडर-VI द्वारा 1453 में ही पूर्वी सामुद्रिक व्यापार हेतु आज्ञापत्र दे दिया गया था।
- 1500 में 'पेड्रो अल्वरेज कैब्राल' के नेतृत्व में दो जहाज़ी बेड़े भारत आए।
- वास्कोडिगामा 1502 में दूसरी बार भारत आया। इसके बाद पुर्तगालियों का भारत में निरंतर आगमन प्रारंभ हुआ। पुर्तगालियों की पहली फैक्ट्री कालीकट में स्थापित हुई, जिसे जमोरिन द्वारा बाद में बंद करवा दिया गया।
- 1503 में काली मिर्च और मसालों के व्यापार पर एकाधिकार प्राप्त करने के उद्देश्य से पुर्तगालियों ने कोचीन के पास अपनी पहली व्यापारिक कोठी बनाई। इसके बाद कन्नूर (1505) में पुर्तगालियों ने अपनी दूसरी फैक्ट्री बनाई।

पुर्तगाली वायसराय

- **'फ्राँसिस्को-डी-अल्मीडा'** (1505-1509) भारत में पहला पुर्तगाली वायसराय बनकर आया। उसने भारत पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिये मज़बूत सामुद्रिक नीति का संचालन किया, जिसे 'ब्लू वाटर पॉलिसी' अथवा 'शांत जल की नीति' कहा जाता है।

24 अंग्रेज़ों की भारत विजय (The British Conquest of India)

भूमिका

भारत में व्यापार करने के उद्देश्य से क्रमशः पुर्तगाली, डच, अंग्रेज़, डेनिस व फ्राँसीसी भारत आए। प्रारंभ में ये कंपनियाँ भारत के राजा-रजवाड़ों से किसी विशेष क्षेत्र में एक निश्चित कर अदा करके व्यापार हेतु एकाधिकार प्राप्त करती थी। समय के साथ इन व्यापारिक कंपनियों की महत्त्वाकांक्षाएँ बढ़ने लगीं। भारतीय राज्यों की आपसी ईर्ष्या एवं धन लोलुपता का लाभ उठाकर ये व्यापारिक कंपनियाँ अपना अधिकार क्षेत्र बढ़ाने लगीं। 18वीं शताब्दी तक एक ओर जहाँ मुगल शक्ति प्रायः क्षीण हो चुकी थी, वहीं दूसरी ओर अन्य छोटे-बड़े राज्यों में भी किसी केंद्रीय शक्ति का अभाव था। परिणामतः इस स्वर्णिम अवसर का अंग्रेज़ों ने भरपूर लाभ उठाया और अपने साम्राज्य का बीजारोपण किया।

प्रारंभ में यूरोपीय कंपनियों– पुर्तगाली, डच, ब्रिटिश एवं फ्राँसीसी के बीच व्यापारिक एकाधिकार प्राप्त करने के उद्देश्य से एक चतुर्भुजी संघर्ष हुआ। अंततः इस संघर्ष में अंग्रेज़ों को सफलता मिली। चतुर्भुजी संघर्ष में सफल होने के बाद अंग्रेज़ों ने भारतीय राज्यों क्रमशः बंगाल, मैसूर, मराठा एवं सिख आदि को जीतना प्रारंभ किया। 1857 तक अपनी रणनीति और युद्धों से अंग्रेज़ों ने संपूर्ण भारत पर अधिकार कर लिया।

यूरोपीय कंपनियों के बीच संघर्ष

आंग्ल-फ्राँसीसी संघर्ष

भारत आने वाली यूरोपीय कंपनियों में पुर्तगाली व डच कंपनियाँ जहाँ व्यापारिक व राजनीतिक प्रतिस्पर्द्धा में पहले ही परास्त हो गईं वहीं डेनिस कंपनी 1745 तक अपनी सारी संपत्ति ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी को बेचकर भारत से चली गई। अब ब्रिटिश और फ्रेंच कंपनियाँ ही भारत में प्रमुख व्यापारिक कंपनियाँ थीं जिनके पास पर्याप्त व्यापारिक एकाधिकार थे। अतः दोनों कंपनियों में व्यापारिक प्रतिस्पर्धा और राजनीतिक संघर्ष होना स्वाभाविक था। इन प्रतिस्पर्द्धाओं के चलते दोनों कंपनियों के मध्य तीन युद्ध हुए, जिन्हें 'कर्नाटक युद्ध' के नाम से जाना जाता है। इस आंग्ल-फ्राँसीसी संघर्ष में अंततः अंग्रेज़ों को सफलता प्राप्त हुई।

प्रथम कर्नाटक युद्ध (1746–1748)

- इस युद्ध को 'सेंट टोमे' का युद्ध भी कहा जाता है।
- इस युद्ध की पृष्ठभूमि यूरोप में दोनों शक्तियों (फ्राँस एवं ब्रिटेन) के मध्य लड़े गए ऑस्ट्रिया के उत्तराधिकार के युद्ध से ही तैयार हो गई थी। यूरोप में फ्राँस और ब्रिटेन एक-दूसरे के विरोधी थे, जिसका प्रभाव भारत में भी पड़ा।
- प्रथम कर्नाटक युद्ध प्रारंभ होने का तात्कालिक कारण एक अंग्रेज़ अधिकारी कैप्टन बार्नेट द्वारा कुछ फ्राँसीसी जहाज़ों पर कब्ज़ा कर लेना था।
- डूप्ले ने मॉरीशस के फ्राँसीसी गवर्नर ला बूर्डोने की सहायता से मद्रास को जीत लिया। अंग्रेज़ों ने कर्नाटक के नवाब अनवरुद्दीन से डूप्ले के विरुद्ध सहायता मांगी। हालाँकि हस्तक्षेप के बाद भी डूप्ले ने मद्रास घेरा नहीं छोड़ा।
- प्रथम कर्नाटक युद्ध फ्राँसीसी सेना और कर्नाटक के नवाब अनवरुद्दीन के मध्य लड़ा गया। इस युद्ध में फ्राँसीसी विजयी रहे। यह किसी विदेशी सेना की पहली विजय मानी जाती है। इस विजय का मुख्य कारण फ्राँसीसियों का तोपखाना था।
- प्रथम कर्नाटक युद्ध का अंत 1748 में ऑस्ट्रिया के उत्तराधिकार युद्ध की समाप्ति के पश्चात् हुई 'एक्स-ला-शैपेल' की संधि (1748) से हुआ। इस संधि की शर्तों के अनुसार मद्रास अंग्रेज़ों को तथा अमेरिका में लुईवर्ग फ्राँसीसियों को वापस मिल गया। इस तरह, युद्ध के प्रथम दौर में दोनों दल बराबर रहे।
- प्रथम कर्नाटक युद्ध का कोई तात्कालिक राजनीतिक प्रभाव भारत पर नहीं पड़ा। न तो इस युद्ध से फ्राँसीसियों को कोई लाभ हुआ और न ही अंग्रेज़ों को, परंतु इस युद्ध ने भारतीय राजाओं की कमज़ोरियों को उजागर कर दिया और यह स्पष्ट हो गया कि यूरोपीय प्रणाली से प्रशिक्षित और सुव्यवस्थित छोटी सेना भी भारतीय नरेशों की बड़ी सेना को परास्त कर सकती है।
- फ्राँसीसी सत्ता और शक्ति का प्रभुत्व दक्षिण भारत के राज्यों पर जम गया और भारतीय नरेश अपनी राजनीतिक समस्याओं के समाधान के लिये फ्राँसीसी सहायता प्राप्त करने को उत्सुक हो गए।

द्वितीय कर्नाटक युद्ध (1749–1754)

- इस युद्ध की पृष्ठभूमि भारतीय परिस्थितियों ने तैयार की। हैदराबाद के संस्थापक (एक स्वतंत्र राज्य के रूप में) निज़ाम-उल-मुल्क की 1748 में मृत्यु के बाद उसके पुत्र नासिर जंग और पौत्र मुज़फ्फरजंग में गद्दी के लिये संघर्ष छिड़ गया।
- कर्नाटक में भी ऐसी स्थिति तब बन गई जब मराठों ने 7 वर्ष तक कैद में रखने के बाद चंदा साहब को आज़ाद कर दिया। ऐसे में अनवरुद्दीन व चंदा साहब के बीच भी गद्दी के लिये संघर्ष छिड़ गया।
- फ्राँसीसियों ने चंदा साहब व मुज़फ्फरजंग का समर्थन किया तो अंग्रेज़ों ने अनवरुद्दीन व नासिरजंग का।
- 1749 में अंबर के युद्ध में अनवरुद्दीन मारा गया तथा उसके बेटे मुहम्मद अली ने त्रिचनापल्ली में शरण ले ली।
- 1750 में हैदराबाद में नासिरजंग भी मारा गया और मुज़फ्फरजंग नवाब बना। उसने प्रसन्न होकर फ्राँसीसी गवर्नर डूप्ले को मसुलीपट्टनम व पॉण्डिचेरी का क्षेत्र प्रदान कर दिया और साथ ही डूप्ले को कृष्णा नदी से कन्याकुमारी तक के क्षेत्र का गवर्नर बनाया।

25 भारत में ब्रिटिश शक्ति का विस्तार (Expansion of British Power in India)

भूमिका

1600 में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी जब भारत आई, वह पूर्ण रूप से एक व्यापारिक कंपनी थी। किंतु कालांतर में भारत की कमज़ोर राजनीतिक स्थिति और व्याप्त अराजकता का लाभ उठाते हुए कंपनी ने सशस्त्र व्यापार नीति का अनुसरण किया। 1764 (बक्सर का युद्ध) तक अंग्रेज़ अपने अधिकांश यूरोपीय तथा बंगाल जैसे प्रमुख देशी प्रतिद्वंद्वियों का उन्मूलन कर चुके थे। अत: भारत अब ब्रिटिश विस्तार के लिये एक मुक्त क्षेत्र था। अंग्रेज़ों ने अपनी भारत विजय के दौरान कुछ महत्त्वपूर्ण सबक सीखे, जिनका ब्रिटिश शक्ति के विस्तार में भी अनुसरण किया। अंग्रेज़ों का विश्वास था कि भारत में एक ठोस राष्ट्रवादी विचारधारा के अभाव में वे भारतीय शासकों के आपसी झगड़ों का फायदा उठाकर अपनी राजनीतिक आकांक्षाओं को आसानी से पूर्ण कर सकते हैं। इसी नीति का अनुसरण करते हुए ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत में क्षेत्रीय विस्तार किया।

ब्रिटिश शक्ति के विस्तार में निहित कारण

- भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना चरणबद्ध रूप से हुई। भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के लिये मुख्यत: पाँच व्यक्ति (लॉर्ड क्लाइव, वारेन हेस्टिंग्स, कॉर्नवालिस, वेलेजली और डलहौजी) प्रमुख रूप से उत्तरदायी थे।
- इन्होंने तत्कालीन भारतीय परिस्थितियों का लाभ उठाकर (केंद्रीय सत्ता का अभाव, राजनीतिक अस्थिरता, अदूरदर्शिता) ब्रिटिश शक्ति के विस्तार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- अंग्रेज़ गवर्नरों द्वारा भारत में क्षेत्र विस्तार के संदर्भ में कहा जाता है कि *"क्लाइव ने भारत में अंग्रेज़ी राज्य की नींव डाली,वारेन हेस्टिंग्स ने उस नींव को मज़बूत किया, कॉर्नवालिस ने इमारत खड़ी करनी प्रारंभ की, वेलेजली ने उस इमारत को पूरा किया और बाद के गवर्नर जनरलों ने उसे अंतिम शक्ल प्रदान की।"*
- अंग्रेज़ों ने भारतीय राजाओं के साथ विजय अथवा कूटनीति के उद्देश्य से कई छोटे-बड़े युद्ध किये और 1857 तक अपनी कूटनीति, षड्यंत्रों, रणनीति और युद्धों से संपूर्ण भारत पर अधिकार कर लिया।
- सामाजिक-धार्मिक दृष्टि से भारत विभिन्न वर्गों, जातियों और संप्रदायों में विभक्त था, जिसके कारण उनकी वफ़ादारी केवल अपनी जाति एवं क्षेत्र तक सीमित रही। फलत: ब्रिटिश के विरुद्ध वे एकजुट होकर बड़ा प्रतिरोध नहीं कर सके।
- ब्रिटिश काल में अंग्रेज़ों ने रणनीतिक युद्धों के साथ-साथ भारत पर प्रभुत्व बनाये रखने हेतु तीन प्रमुख नीतियाँ अपनाई, जो निम्न हैं-
  1. लॉर्ड क्लाइव की द्वैध शासन की नीति
  2. वेलेजली की सहायक संधि की नीति
  3. लॉर्ड डलहौजी की व्यपगत सिद्धांत की नीति

लॉर्ड क्लाइव का द्वैध शासन

- प्लासी के युद्ध (23 जून, 1757) का परिणाम बंगाल विजय के रूप में सामने आया। बंगाल, मीर जाफ़र की महत्त्वाकांक्षा के कारण अराजकता की ओर अग्रसर हुआ, वहीं लॉर्ड क्लाइव ने आंतरिक संघर्ष का लाभ उठाकर कूटनीतिक षड्यंत्रों से बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला को युद्ध में परास्त किया।
- बक्सर के युद्ध (22 अक्तूबर, 1764) के पश्चात् हुई इलाहाबाद की संधि (12 अगस्त, 1765) से अंग्रेज़ों को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी प्राप्त हो गई। कालांतर में बंगाल के नवाब नज्मुद्दौला से अंग्रेज़ों को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी और निज़ामत (सूबेदारी) भी प्राप्त हो गई।
- ध्यातव्य हो, दीवान और सूबेदार मुगलकालीन प्रांतीय प्रशासन के स्तर पर दो प्रमुख अधिकारी होते थे। दीवानी से अभिप्राय भूमिकर वसूल करना और भूमि कर संबंधी दीवानी मुकदमों का निर्णय करना होता था, जबकि सूबेदारी/निज़ामत का अभिप्राय आंतरिक सुरक्षा, शांति तथा सुव्यवस्था, न्याय-व्यवस्था और फौजदारी मुकदमों का निर्णय करना आदि होता था।
- कंपनी दीवानी और निज़ामत के कार्यों का निष्पादन अपने भारतीय अधिकारियों के माध्यम से करती थी। दीवानी कार्य के लिये कंपनी ने बंगाल में रज़ा खाँ, बिहार में शिताबराय तथा उड़ीसा में रायदुर्लभ को दीवान नियुक्त किया।
- उपरोक्त व्यवस्था के अतिरिक्त बाकी व्यवस्थाएँ पूर्ववत् ही बनी रहीं। नवाब के अधिकारी और कर्मचारी प्रशासन में दीवानी कार्यों को छोड़कर शेष समस्त कार्य पूर्ववत् ही संपन्न करते रहे। इस प्रकार बंगाल में एक ही समय में दो प्रकार की शासन व्यवस्थाएँ चलने लगीं। यह एक ऐसी व्यवस्था थी, जिसमें अधिकार एवं उत्तरदायित्व दोनों को अलग कर दिया गया।
- इस प्रकार, ब्रिटिश कंपनी, बंगाल की वास्तविक शासक थी। हालाँकि बंगाल का शासक नवाब ही था और प्रशासन का उत्तरदायित्व भी उसी के हाथों में था, किंतु नवाब के समस्त अधिकार छीन लिये गए। वह अब स्वतंत्र शासक नहीं था, अपितु वह कंपनी की अनुकंपा और वार्षिक अनुदान पर निर्भर हो गया। बंगाल में लॉर्ड क्लाइव द्वारा लागू इस व्यवस्था को ही 'द्वैध शासन व्यवस्था' कहते हैं।

द्वैध शासन स्थापित करने के कारण

- बक्सर युद्ध (1764) की विजय के पश्चात् कंपनी यदि सीधे ही सत्ता हाथ में ले लेती तो कंपनी का वास्तविक साम्राज्यवादी चेहरा जनता के समक्ष आ जाता, जिससे स्थानीय विद्रोह भड़कने तथा अन्य विदेशी प्रतिद्वंद्वियों के एकजुट होने का अंदेशा था।

26 भारत में ब्रिटिश शासकों की आर्थिक नीति एवं उसका प्रभाव (British Ruler's Economic Policy and Its Impact in India)

भूमिका

भारतीय अर्थव्यवस्था पर ब्रिटिश नीतियों का प्रभाव मुगल शासक औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद ही सहज परिलक्षित होने लगा था। उत्तरवर्ती मुगल शासकों द्वारा तत्कालीन यूरोपीय व्यापारियों को दी गई उदारतापूर्ण रियायतों ने स्वदेशी व्यापारियों के हितों को नुकसान पहुँचाया। अंग्रेज़ों ने प्लासी (1757) और बक्सर (1764) युद्ध के बाद भारतीय व्यापार पर अपना एकाधिकार स्थापित कर लिया। फलतः भारतीय अर्थव्यवस्था अधिशेष तथा आत्मनिर्भरता मूलक अर्थव्यवस्था से औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था में परिवर्तित हो गई।

अंग्रेज़ों की औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था का उद्देश्य अपने उद्योगों के लिये भारत से कच्चा माल प्राप्त कर अपने उत्पादों को भारतीय बाज़ार में बेचना था। अंग्रेज़ों ने भारतीय अर्थव्यवस्था से संबंधित सभी पक्षों का केवल अपने हितों की पूर्ति हेतु प्रयोग किया। परिणामस्वरूप, भारत एक निर्यातक देश से आयातक देश बन गया।

भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विभिन्न चरण

उपनिवेशवाद एक विस्तारवादी अवधारणा है, जिसके तहत किसी देश का आर्थिक शोषण एवं उत्पीड़न होता है। इसके तहत एक राष्ट्र द्वारा किसी अन्य राष्ट्र की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक संरचना पर नियंत्रण किया जाता है। नियंत्रण करने वाला देश 'मातृदेश' कहलाता है। इस तरह, उपनिवेश के अंदर बनाई गई नीतियों का मुख्य लक्ष्य मातृदेश (औपनिवेशिक शक्ति) को लाभ पहुँचाना होता है। इस दृष्टि से ब्रिटिश ने अपने भारतीय उपनिवेश से आर्थिक लाभ प्राप्त करने के लिये समय-समय पर विभिन्न नीतियाँ बनाईं। भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद को तीन चरणों में विभक्त किया जा सकता है।

उपनिवेशवाद का प्रथम चरण : वाणिज्यिक पूंजीवाद का चरण (1757–1813)

- 1757 में 'प्लासी युद्ध' के बाद इंग्लैंड की 'ईस्ट इंडिया कंपनी' ने बंगाल पर प्रभुत्व स्थापित कर लिया। यहीं से भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद की शुरुआत मानी जाती है।
- उपनिवेशवाद के प्रथम चरण में ब्रिटिश कंपनी का पूरा ध्यान आर्थिक लूट पर ही केंद्रित रहा। फलतः इस चरण में व्यापारिक एकाधिकार के लिये इन्हें पुर्तगाली, डच और फ्राँसीसी कंपनियों से कई युद्ध लड़ने पड़े।

  इस चरण में ब्रिटिशों के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित थे–

  - भारत के व्यापार पर एकाधिकार करना।
  - राजनीतिक प्रभाव स्थापित कर राजस्व प्राप्त करना।
  - कम-से-कम मूल्यों पर वस्तुओं को खरीद कर यूरोप में उन्हें अधिक-से-अधिक मूल्यों पर बेचना।

- अपने यूरोपीय प्रतिद्वंद्वियों को हरसंभव तरीके से बाहर निकालना।
- पूंजी निवेश के माध्यम से लाभ कमाना (यहाँ पूंजी निवेश से तात्पर्य है कि बंगाल से प्राप्त राजस्व से कंपनी द्वारा भारतीय वस्तुओं की खरीद कर उसको यूरोप में निर्यात कर मुनाफा कमाना।) वस्तुतः इसके माध्यम से अब भारतीय वस्तुओं को खरीदने के लिये इंग्लैंड से धन लाने की आवश्यकता नहीं रही।
- भारतीय प्रशासन, परंपरागत न्यायिक कानूनों, यातायात, संचार तथा औद्योगिक व्यवस्था में विशेष मौलिक परिवर्तन किये बगैर पूंजी प्राप्त करना।
- कंपनी ने आर्थिक कोष बढ़ाने के लिये विजित क्षेत्रों की स्थानीय जनता पर कर लगाए। प्लासी के युद्ध के बाद जीते गए क्षेत्रों (बंगाल, बिहार, उड़ीसा आदि) की सरकारी आय पर कंपनी का पूरा नियंत्रण स्थापित हो गया।
- ब्रिटिश की आर्थिक नीति से उद्योग-धंधों का ह्रास हुआ। परिणामतः अब राष्ट्रीय धन का एकमात्र स्रोत कृषि रह गया और अधिकतर जनसंख्या कृषि पर निर्भर रहने लगी।
- किसानों से वसूली गई राशि (लगान के रूप में) अंग्रेज़ों द्वारा वस्तुओं और कीमती धातुओं के रूप में इंग्लैंड और यूरोप को निर्यात कर दी जाती थी। भारत की लूट इंग्लैंड में पूंजी संचय का अप्रत्यक्ष स्रोत थी।

इस प्रकार, उपनिवेशवाद के प्रथम चरण में कंपनी का एकमात्र उद्देश्य किसी तरह यहाँ से धन को लूटना था। प्रसिद्ध ब्रिटिश इतिहासकार पर्सिवल स्पीयर ने टिप्पणी की, *"अब बंगाल में खुला तथा बेशर्म लूट का काल आरंभ हुआ।"* 1765 से 1772 के काल को प्रसिद्ध भारतीय इतिहासकार के.एम. पणिक्कर ने 'डाकू राज्य' कहा है।

उपनिवेशवाद का द्वितीय चरण : औद्योगिक पूंजीवाद (1813–1858)

- 1813 में भारत के व्यापार से कंपनी का एकाधिकार समाप्त हो गया। तत्पश्चात् औद्योगिक पूंजीवाद द्वारा भारत के शोषण का नया रूप सामने आया। इस चरण में इंग्लैंड में हुई औद्योगिक क्रांति को ध्यान में रखकर नीतियाँ बनाई गईं। वस्तुतः इंग्लैंड में बड़े पैमाने पर उद्योगों की स्थापना हुई।
- विदित है कि 1765 से 1785 के बीच अनेक वैज्ञानिक आविष्कार हुए, जैसे- कताई की मशीन, स्टीम इंजन, पावरलूम, वाटरफ्रेम आदि। उद्योगों की स्थापना होने से जहाँ एक तरफ कच्चे माल एवं खाद्यान्न की आवश्यकता महसूस हुई, वहीं दूसरी तरफ कारखाना निर्मित उत्पादकों की बिक्री के लिये एक बड़े बाज़ार की आवश्यकता भी पड़ी। परिणामस्वरूप इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये ब्रिटिश ने भारत में नई नीतियाँ लागू कीं।

27 1857 का विद्रोह
(The Revolt of 1857)

भूमिका

1757 में 'प्लासी युद्ध' के बाद अंग्रेज़ों ने भारत में अपने उपनिवेश की शुरुआत की। ब्रिटिश उपनिवेश का प्रारंभिक उद्देश्य अधिकतम आर्थिक व व्यापारिक लाभ कमाना था जो कालांतर में भारत को कच्चे माल का निर्यातक और तैयार माल के आयातक बनाने तक केंद्रित हो गया। वहीं जहाँ एक तरफ भारत का तेज़ी से विऔद्योगीकरण हुआ तथा भारतीय समुदाय की कृषि पर निर्भरता अब पहले से और अधिक बढ़ गई। दूसरी तरफ भारी-भरकम कर, ज़मींदारों के अत्याचार व अंग्रेज़ों की भू-नीतियों के कारण किसान समुदाय भी निम्नतम स्थिति में पहुँच गया। कच्चे माल के निर्यात को बढ़ावा देने के लिये कृषि के वाणिज्यीकरण पर बल दिया गया जिसमें नील, कपास, अफीम, चाय, जूट, कॉफी आदि के उत्पादन हेतु कृषकों को मज़बूर किया गया।

कृषि के वाणिज्यीकरण से खाद्यान्न में कमी आई जिससे अकाल की बारंबारता बढ़ने लगी। परिणामस्वरूप देश में अंग्रेज़ों के विरुद्ध जन आक्रोश बढ़ता गया, जो 1857 में एक व्यापक जनविद्रोह के रूप में भड़क उठा। 1857 के विद्रोह का आरंभ 10 मई, 1857 को मेरठ में कंपनी के भारतीय सिपाहियों द्वारा शुरू हुआ, जो धीरे-धीरे कानपुर, बरेली, झाँसी, दिल्ली, अवध आदि स्थानों तक फैल गया। इसकी शुरुआत एक सैन्य विद्रोह के रूप में हुई, परंतु कालांतर में उसका स्वरूप बदलकर ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध एक 'जनव्यापी विद्रोह' का हो गया।

1857 के विद्रोह के प्रमुख कारण

राजनीतिक कारण

- 1857 की क्रांति के राजनीतिक कारणों में लॉर्ड वेलेजली की 'सहायक संधि' तथा लॉर्ड डलहौजी का 'व्यपगत का सिद्धांत' प्रमुख था।
- वेलेजली की 'सहायक संधि' के अनुसार भारतीय राजाओं को अपने राज्यों में कंपनी की सेना रखनी पड़ती थी। सहायक संधि से भारतीय राजाओं की स्वतंत्रता समाप्त होने लगी और राज्यों में कंपनी का हस्तक्षेप बढ़ने लगा था।
- लॉर्ड डलहौजी की 'राज्य हड़प नीति' या 'व्यपगत का सिद्धांत' (Doctrine of lapse) द्वारा अंग्रेज़ों ने हिंदू राजाओं के दत्तक पुत्र लेने के अधिकार को समाप्त कर दिया। वैध उत्तराधिकारी नहीं होने की स्थिति में राज्यों का विलय अंग्रेज़ी राज्यों में कर लिया जाता था।
- लॉर्ड डलहौजी द्वारा विलय किये गए राज्यों का क्रम-

  सतारा (1848) $\rightarrow$ जैतपुर, संबलपुर (1849) $\rightarrow$ बघाट (1850) $\rightarrow$ उदयपुर (1852) $\rightarrow$ झाँसी (1853) $\rightarrow$ नागपुर (1854) $\rightarrow$ करौली (1855) $\rightarrow$ अवध (1856)
- रियासतों के विलय के अतिरिक्त पेशवा (नाना साहब) की पेंशन रोके जाने का विषय भी असंतोष का कारण बना।

नोट: डलहौजी ने 1855 में करौली को भी अपनी व्यपगत नीति के तहत विलय किया था, किंतु बोर्ड ऑफ कंट्रोल ने मान्यता नहीं दी। फलतः इसे वापस लौटाना पड़ा।

- 1856 में अवध का विलय कुप्रशासन के आधार पर किया गया क्योंकि डलहौजी की हड़प नीति यहाँ लागू नहीं हो रही थी।
- इसके लिये अवध के रेजिडेंट स्लीमेन से रिपोर्ट मांगी गई, किंतु उसने ऐसा करने से इनकार कर दिया और कहा कि *"अंग्रेज़ों के लिये उनका नाम किसी अन्य चीज़ से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है।"*
- बाद में आउट्रम को वहाँ रेजिडेंट बनाकर भेजा गया और इसी की रिपोर्ट के आधार पर 1856 में अवध का विलय किया गया।
- विलय के बाद हेनरी लॉरेंस को अवध का रेजिडेंट बनाया गया।

प्रशासनिक कारण

- अंग्रेज़ों ने भेदभावपूर्ण नीति अपनाते हुए, भारतीयों को प्रशासनिक सेवाओं में सम्मिलित नहीं होने दिया तथा उच्च पदों पर भारतीयों को हटाकर ब्रिटिश लोगों को नियुक्त किया। अंग्रेज़ भारतीयों को उच्च सेवाओं हेतु अयोग्य मानते थे। इन सब बातों से क्षुब्ध होकर भारतीयों में आक्रोश का भाव जागृत हो चुका था, जो 1857 की क्रांति के रूप में सामने आया।
- अंग्रेज़ न्याय के क्षेत्र में भी स्वयं को भारतीयों से उच्च व श्रेष्ठ समझते थे। भारतीय जज किसी अंग्रेज़ के विरुद्ध मुकदमे की सुनवाई नहीं कर सकते थे। अंग्रेज़ों की न्याय प्रणाली पक्षपातपूर्ण, दीर्घावधिक व खर्चीली थी। अतः भारतीय इससे असंतुष्ट थे, जो 1857 के विद्रोह में जनाक्रोश का एक कारण बना।
- डलहौजी ने तंजौर तथा कर्नाटक के नवाबों की उपाधियाँ जब्त कर लीं, मुगल शासक बहादुरशाह को अपमानित कर लाल किला खाली करने को कहा और लॉर्ड कैनिंग ने घोषणा की कि बहादुरशाह के उत्तराधिकारी मुगल सम्राट नहीं सिर्फ राजा ही कहलायेंगे। परिणामतः मुगलों ने क्रांति के समय विद्रोहियों का साथ दिया।
- प्रशासन संबंधी कार्यों में योग्यता की जगह धर्म को आधार बनाया गया जिससे ईसाईयत की धर्मांतरण पद्धति का प्रसार हुआ, जिससे आम जन में विद्रोह की भावना उत्पन्न हुई।
- 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध से ही अकालों की बारंबारता ने ब्रिटिश प्रशासनिक तंत्र की पोल खोल दी।

सामाजिक एवं धार्मिक कारण

- सांस्कृतिक सुधार की नीतियों से पारंपरिक भारतीय संस्कृति को हीन मानकर बदलाव करना, इससे समाज का रूढ़िवादी वर्ग ब्रिटिशों के विरुद्ध खड़ा हो गया।

28 प्रमुख भारतीय विद्रोह
(Major Indian Revolts)

भूमिका

ब्रिटिश हुकूमत और भारतीय शोषकों, जैसे- ज़मींदार, राजा-रजवाड़े, कुलीन वर्ग आदि के ख़िलाफ़ 18वीं सदी से ही सामान्य-नागरिक, कृषक तथा जनजातीय लोग अपना असंतोष प्रकट करने लगे थे। कृषक आंदोलनों का कारण ब्रिटिशों की भू-नीतियाँ एवं राजस्व की दमनात्मक वसूली आदि थी। यद्यपि अधिकांश विद्रोहों का पुलिस तथा सेना की मदद से दमन किया गया, परंतु भारतीय किसानों ने विभिन्न स्थानों पर अपना प्रतिरोध दर्ज़ कराया। जनजातीय विद्रोह का कारण उनके परंपरागत अधिकारों का हनन था। आदिवासियों का वन पर परंपरागत अधिकार था परंतु सरकार ने वन नीति के तहत उसे सरकारी संपत्ति घोषित कर दिया। आबकारी कर, नमक कर जैसे करों की दमनकारी वसूली भी इन विद्रोहों का कारण बनी। ईसाई धर्म प्रचारकों ने भारतीय संस्कृति पर प्रहार किया। फलतः समय-समय पर विभिन्न जन विद्रोह हुए।

प्रमुख जन विद्रोह

संन्यासी विद्रोह (बंगाल, 1770-1820) (कुछ स्रोतों में 1763-1800)

- इस आंदोलन का प्रमुख कारण अत्यधिक शोषण, अकालों की निरंतरता, अंग्रेजों की लूटखसोट, आर्थिक मंदी व राजनैतिक अशांति एवं तात्कालिक कारण अंग्रेज़ों द्वारा हिंदू व मुस्लिम तीर्थ स्थानों की यात्रा पर लगाया गया प्रतिबंध था।
- संन्यासी प्रभाव क्षेत्र ढाका, रंगपुर तथा मैमनपुर थे।
- इस आंदोलन के नेतृत्वकर्ता मंजु शाह एवं देवी चौधरानी थे।
- 1770 के अकाल के बाद तो इतना तीव्रगामी विद्रोह किया गया कि 1773 में विद्रोहियों ने समानांतर सरकार बना ली।
- बंकिम चंद्र चटर्जी द्वारा लिखित उपन्यास 'आनंदमठ' का कथानक संन्यासी विद्रोह पर आधारित है।
- संन्यासी विद्रोह को दबाने का श्रेय 'वारेन हेस्टिंग्स' को दिया जाता है।

फकीर विद्रोह (बंगाल, 1776-77)

- यह एक धार्मिक विद्रोह था, जो घुमक्कड़ मुसलमान फकीरों के गुट द्वारा किया गया था।
- इस विद्रोह के नेता मज़नूमशाह ने अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध विद्रोह करते हुए ज़मींदारों और किसानों से धन की वसूली की।
- मज़नूमशाह की मृत्यु के पश्चात् आंदोलन की बागडोर चिरागअली शाह ने सँभाली। राजपूत, पठान एवं सेना के भूतपूर्व सैनिकों ने आंदोलन को सहयोग प्रदान किया।
- भवानी पाठक व देवी चौधरानी जैसे हिंदू नेताओं ने इस आंदोलन की सहायता की।
- कालांतर में इस आंदोलन के समर्थकों ने हिंसक गतिविधियाँ प्रारंभ कर दीं, जो अंग्रेज़ी फैक्ट्रियों एवं सैनिक साजो-सामान पर केंद्रित थीं।
- 19वीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों तक अंग्रेज़ी सेनाओं ने आंदोलन को कठोरतापूर्वक दबा दिया।

पाइक विद्रोह (1817–1825)

- यह विद्रोह उड़ीसा की 'पाइक' जाति द्वारा ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के विरुद्ध एक सशस्त्र विद्रोह था। यह ओडिशा के खुर्दा ज़िले से शुरू हुआ।
- बक्शी जगबंधु विद्याधर के नेतृत्व में इस विद्रोह को अंजाम दिया गया जो कि खुर्दा के राजा के सैन्य कमांडर थे।
- पाइक जाति को परंपरागत रूप से खुर्दा के राजा द्वारा सैन्य गतिविधियों के लिये कर मुक्त भूमि का आवंटन किया जाता था। अंग्रेज़ों ने इस पर रोक लगा दी। अन्य कारणों में भारतीयों से अंग्रेज़ों द्वारा जबरन वसूली और उत्पीड़न भी शामिल रहा, जिससे यह आंदोलन आक्रोशित हो उठा।
- 1825 तक इस आंदोलन का पूर्णतः दमन कर दिया गया।

नोटः केंद्रीय बजट 2017-18 में इस विद्रोह के 200 साल पूरे होने पर एक भव्य समारोह मनाने की घोषणा की गई।

अहोम विद्रोह (1828–1833; असम)

- 1824 में बर्मा-युद्ध के बाद अंग्रेज़ों ने उत्तरी असम पर अधिकार कर लिया था, जिसे असम के अहोम-वंश के उत्तराधिकारियों ने नापसंद किया और ईस्ट इंडिया कंपनी से असम छोड़कर चले जाने को कहा, परिणामस्वरूप विद्रोह फूट पड़ा।
- 1828 से 1830 तक अहोमों ने गोमधर कुँवर के नेतृत्व में कंपनी के विरुद्ध विद्रोह किया, परंतु विद्रोह सफल न हो सका। अंग्रेज़ अधिकारियों ने गोमधर कुँवर को गिरफ्तार कर अंततः विद्रोह को दबा दिया।
- 1830 में अहोमों ने कुमार रूपचंद के नेतृत्व में दूसरे विद्रोह की योजना बनाई, परंतु इससे पहले विद्रोह होता, कंपनी ने शांति की नीति अपनाते हुए 1833 में उत्तरी असम के प्रदेश महाराज पुरंदर सिंह को दे दिये। इस तरह अहोम विद्रोह शांत हो गया।

फराज़ी/फरैज़ी विद्रोह (1838–1857; बंगाल)

- फरैज़ी विद्रोह का सूत्रपात शरीयतुल्ला द्वारा बंगाल में किया गया। इसका प्रचार-प्रसार शरीयतुल्ला के पुत्र मोहम्मद मोहसिन (दादू मियाँ) ने किया।

29 ब्रिटिश भारत में सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन
(Socio-Religious Movement in British India)

भूमिका

ब्रिटिश शासन के दौरान शुरू की गई नई सामाजिक, आर्थिक, प्रशासनिक प्रणाली ने भारतीय समाज के आधारभूत ढाँचे में आमूलचूल परिवर्तन किया। नई एवं परंपरागत व्यवस्था के संघर्ष ने भारतीय समाज में आंतरिक उथल-पुथल को जन्म दिया। भारत में पाश्चात्य शिक्षा का प्रारंभ भी सामाजिक-सांस्कृतिक जागरण का एक महत्त्वपूर्ण कारण था। यद्यपि कंपनी ने भारत के धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप के प्रति संयम की नीति का पालन किया, लेकिन ऐसा उसने अपने औपनिवेशिक हितों के लिये किया। पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित लोगों ने हिंदू सामाजिक संरचना, धर्म, रीति-रिवाज़ व परंपराओं को तर्क की कसौटी पर कसना आरंभ कर दिया। परिणामत: सामाजिक एवं धार्मिक सुधार आंदोलनों का जन्म हुआ। भारतीय समाज को पुनर्जीवन प्रदान करने का प्रयत्न प्रबुद्ध भारतीय सामाजिक एवं धार्मिक सुधारकों, सुधारवादी ब्रिटिश गवर्नर जनरलों एवं पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार ने किया।

भारत का सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति मानी जाती है। जब हमारा समाज और धर्म दोनों गतिहीन हो चला तो इस आंदोलन ने इस स्थिरता को तोड़ने का काम किया। 19वीं सदी में सुधार मुख्यत: नारी केंद्रित और 20वीं सदी में निम्न जाति केंद्रित रहे।

सुधार आंदोलन के कारण

- 1813 के चार्टर एक्ट के तहत ईसाई मिशनरियों का भारत में आगमन हुआ। इन प्रचारकों ने सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार कर हिंदू व इस्लाम धर्म की मान्यताओं एवं व्यवहार पर चोट की। इसके पीछे निहित कारणों में भारतीय समाज का आधुनिकीकरण करना नहीं वरन् ब्रिटिश निर्मित वस्तुओं के लिये खरीददार तैयार करना तथा उपयोगितावादी विचारधारा का प्रयोग कर भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के प्रति निकृष्टता का भाव पैदा करना था। प्रतिक्रियास्वरूप अपने धर्म की रक्षा एवं सामाजिक बुराइयों को दूर करने हेतु अनेक सामाजिक-धार्मिक आंदोलन हुए।
- बौद्धिक विकास की अनुकूल परिस्थितियों से आधुनिक चेतना के साथ समाज का शिक्षित वर्ग सामने आया, जिन्होंने धार्मिक, सामाजिक आडंबरों के प्रति सुधारवादी रवैया अपनाया और उन्हें समसामयिक संदर्भ में उपयोगी व युक्ति-संगत बनाने का प्रयास प्रारंभ किया। इन आंदोलनों को नेतृत्व देने में कुछ संगठनों और व्यक्तियों का महत्त्वपूर्ण योगदान था।

हिंदू धर्म से संबंधित सुधारक संस्थाएँ

ब्रह्म समाज

बंगाल में प्रारंभ हुए समाज सुधार आंदोलनों का नेतृत्व राजा राममोहन राय ने किया। इन्हें भारत में नवजागरण का अग्रदूत, सुधार आंदोलनों का प्रवर्तक, आधुनिक भारत का पिता, नवप्रभात का तारा एवं भारतीय पत्रकारिता का जनक कहा जाता है। राजा राममोहन राय प्राच्य और पाश्चात्य चिंतन के मिले-जुले रूप के प्रतिनिधि थे।

- 1828 में राजा राममोहन राय ने ब्रह्म सभा की स्थापना कलकत्ता में की, जिसे बाद में 'ब्रह्म समाज' कहा गया। ब्रह्म समाज के मुख्य उद्देश्य 'हिंदू धर्म' में सुधार लाना, सभी धर्मों की अच्छाइयों को अपनाना, मूर्ति पूजा का विरोध, एक ब्रह्म की पूजा का उपदेश देना आदि थे। उन्होंने एकेश्वरवाद का समर्थन कर धर्मों की आपसी एकता पर जोर दिया। ब्रह्म समाज के सिद्धांतों और दृष्टिकोण के मुख्य आधार थे- मानव-विवेक (तर्क-शक्ति), वेद व उपनिषद्।
- राजा राममोहन राय धार्मिक, दार्शनिक व सामाजिक दृष्टिकोण में इस्लाम के एकेश्वरवाद, सूफीमत के रहस्यवाद, ईसाई धर्म की आचार शास्त्रीय नीतिपरक शिक्षा और पश्चिम के आधुनिक देशों के उदारवादी-बुद्धिवादी सिद्धांतों के समर्थक थे।
- सामाजिक क्षेत्र में राजा राममोहन राय हिंदू समाज की कुरीतियों- सती प्रथा, बहुपत्नी प्रथा, वेश्यागमन, जातिवाद, बाल विवाह आदि के घोर विरोधी थे। विधवा पुनर्विवाह का इन्होंने समर्थन किया।
- धार्मिक क्षेत्र में उन्होंने मूर्ति पूजा की आलोचना करते हुए, अपने पक्ष को वेदोक्तियों के माध्यम से सिद्ध करने का प्रयास किया। इन्होंने कर्मकांड का विरोध किया तथा धार्मिक ग्रंथों की व्याख्या के लिये पुरोहित वर्ग को अस्वीकार किया। उन्होंने यह भी कहा कि अगर धर्म सामाजिक सुधार की अनुमति नहीं देते तो उसे बदल दिया जाना चाहिये।
- एकेश्वरवादी मत के प्रचार हेतु उन्होंने 1815 में 'आत्मीय सभा' का भी गठन किया। 1822 में फारसी भाषा में उन्होंने मिरात-उल-अखबार (मिरातुल अखबार) का प्रकाशन किया। कलकत्ता यूनिटेरियन कमेटी का गठन 1823 में राजा राममोहन राय, द्वारकानाथ टैगोर और विलियम एडम द्वारा किया गया।
- 1821 में बांग्ला भाषा में 'संवाद कौमुदी' का भी प्रकाशन किया। सती-प्रथा के विरोध के लिये इन्होंने अपनी इस पत्रिका का उपयोग किया।
- राजा राममोहन राय ने डच घड़ीसाज डेविड हेयर के सहयोग से 1817 में कलकत्ता में 'हिंदू कॉलेज' की स्थापना की। 1825 में उन्होंने कलकत्ता में 'वेदांत कॉलेज' की स्थापना की।

नोट: उल्लेखनीय है कि राजा राममोहन राय ने 1826 के जूरी अधिनियम का घोर विरोध किया था।

- राजा राममोहन राय ने फारसी भाषा में 'तोहफत-उल-मुवाह्हीदीन' (एकेश्वरवादियों को उपहार) का प्रकाशन किया, जिसमें उन्होंने एकेश्वरवाद के पक्ष में विवेकपूर्ण तर्क दिये।
- मुगल बादशाह अकबर द्वितीय ने राममोहन राय को 'राजा' की उपाधि प्रदान की थी।

30 भारत में राजनीतिक चेतना का विकास
(The Development of Political Consciousness in India)

भूमिका

भारत में राजनीतिक चेतना का विकास 19वीं शताब्दी की महत्त्वपूर्ण घटना है। ब्रिटिश शासन ने भारत में अपनी सत्ता बनाए रखने के लिये अनेक नीतियों का क्रियान्वयन किया, जिसके परिणामस्वरूप भारत में राजनीतिक चेतना का विकास हुआ। पश्चिमी शिक्षा एवं पाश्चात्य जगत् से संपर्क की राजनीतिक चेतना एवं राष्ट्रीयता के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। अंग्रेज़ी के प्रचार-प्रसार ने उसे जनभाषा तो नहीं बनाया, लेकिन संपर्क भाषा के रूप में अवश्य स्थापित कर दिया। इस संपर्क भाषा ने यह मुमकिन बनाया कि विभिन्न भाषायी समुदाय के भारतीय आपस में विचारों का आदान-प्रदान कर वैचारिक, बौद्धिक एकता की स्थापना कर सकें।

विभिन्न समयांतरालों में ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतीयों के हितों के विरुद्ध उठाए गए कदम भी राष्ट्रीयता के विकास में सहायक सिद्ध हुए। इस दृष्टि से लॉर्ड लिटन का शासन विशेष रूप से उल्लेखनीय रहा है। लिटन ने भारतीय शस्त्र अधिनियम (आर्म्स एक्ट-1878) द्वारा भारतीयों को नि:शस्त्र कर दिया। इससे पहले वर्नाकुलर प्रेस एक्ट (1878) द्वारा भारतीय भाषा में समाचार-पत्रों पर कठोर नियंत्रण स्थापित कर दिये गए। सिविल सर्विस की परीक्षा केवल इंग्लैंड में आयोजित करना तथा आयु-सीमा को घटाकर 21 वर्ष से 19 वर्ष कर देना, ऐसे कदम थे जो भारतीय शिक्षित वर्ग की आकांक्षाओं और हितों पर चोट करते थे। परिणामत: जनता में आक्रोश बढ़ा, जिसने राजनीतिक चेतना के विकास में सहायता की। भारतीय प्रेस एवं साहित्य के प्रचार-प्रसार ने भी राजनीतिक चेतना के विकास में योगदान दिया।

भारत में आधुनिक शिक्षा का विकास

- ईस्ट इंडिया कंपनी प्रारंभ में एक विशुद्ध व्यापारिक कंपनी थी। प्रारंभ में शिक्षा के लिये जो भी प्रयास किये गए, वे व्यक्तिगत तौर पर किये गए थे, जैसे- वारेन हेस्टिंग्स ने 1781 में अरबी व फारसी भाषा के अध्ययन हेतु कलकत्ता मदरसा की स्थापना की, जिसका मुख्य उद्देश्य मुस्लिम कानूनों व इससे संबंधित अन्य विषयों की जानकारी देना था।
- 1784 में सर विलियम जोन्स ने कलकत्ता में 'एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल' की स्थापना की, जिसने प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति के अध्ययन हेतु महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। चार्ल्स विल्किंस ने भगवद्गीता का अंग्रेज़ी अनुवाद किया। विलियम जोंस द्वारा कालिदास कृत अभिज्ञानशाकुंतलम् का अंग्रेज़ी अनुवाद किया गया।
- बनारस के ब्रिटिश रेजिडेंट जोनाथन डंकन के प्रयत्न से 1791 में बनारस में संस्कृत कॉलेज की स्थापना की गई, जिसका उद्देश्य हिंदू विधि एवं दर्शन का अध्ययन करना था।
- कालांतर में लॉर्ड वेलेजली ने कंपनी के असैन्य अधिकारियों की शिक्षा के लिये 1800 में कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की।
- भारतीय रियासतों के साथ पत्र व्यवहार के लिये कंपनी को अरबी, फारसी एवं संस्कृत के ज्ञाताओं की आवश्यकता थी। इसी समय प्रबुद्ध भारतीयों एवं मिशनरियों ने सरकार पर आधुनिक, धर्म निरपेक्ष एवं पाश्चात्य शिक्षा को प्रोत्साहित करने का दबाव डालना प्रारंभ कर दिया।
- कलकत्ता मदरसा एवं संस्कृत कॉलेज में शिक्षा पद्धति के ढाँचे को इस प्रकार तैयार किया गया था कि कंपनी को ऐसे शिक्षित व वफ़ादार वर्ग की प्राप्ति हो सके जो शास्त्रीय व स्थानीय भाषा के अच्छे ज्ञाता होने के साथ-साथ कंपनी के प्रशासन में भी मदद कर सकें। न्यायालयों में अंग्रेज़ न्यायाधीशों को ऐसे परामर्शदाताओं की आवश्यकता थी जो हिंदी, अरबी, उर्दू, फारसी और संस्कृत भाषाओं के ज्ञाता हों व मुस्लिम व हिंदू कानूनों की व्याख्या करने में सक्षम हों।
- प्रबुद्ध भारतीयों ने निष्कर्ष निकाला कि पाश्चात्य शिक्षा के माध्यम से ही सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक दुर्बलता को दूर किया जा सकता है।
- मिशनरियों ने यह निष्कर्ष निकाला कि पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार-प्रसार से भारतीयों की उनके परंपरागत धर्म में आस्था समाप्त हो जाएगी तथा वे ईसाई धर्म की ओर प्रेरित होने लगेंगे, जिससे भारत में ब्रिटिश समर्थकों का एक बड़ा वर्ग तैयार हो जाएगा।
- ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा भारत में शिक्षा के क्षेत्र में वास्तविक प्रयास 1813 के चार्टर अधिनियम के तहत शुरू किया गया।
- 1813 के चार्टर एक्ट में गवर्नर जनरल को अधिकार दिया गया कि वह एक लाख रुपये, साहित्य के पुनरुद्धार और भारत में स्थानीय विद्वानों को प्रोत्साहन देने के लिये एवं ब्रिटिश शासित प्रदेशों के वासियों को विज्ञान व दर्शन की शिक्षा प्रदान करने हेतु खर्च करें।
- वस्तुत: ब्रिटिश सत्ता द्वारा भारत में आधुनिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य छोटे प्रशासनिक पदों पर नियुक्ति हेतु भारतीयों की आवश्यकता थी।
- राजा राममोहन राय तथा डेविड हेयर के प्रयत्नों से 1817 में बना हिंदू कॉलेज (कलकत्ता) पाश्चात्य पद्धति पर उच्च शिक्षा देने का प्रथम कॉलेज था।

31 कॉन्ग्रेस की स्थापना से पूर्व राजनीतिक संस्थाएँ (Political Associations before the Establishment of Congress)

भूमिका

1857 की क्रांति के पश्चात् भारत में राष्ट्रवादी भावनाओं का विकास उभरने लगा। इस दौर के क्रांतिकारियों ने भारतीय जनमानस में नायकों का स्थान प्राप्त किया। भारतवासियों ने देश के आर्थिक पिछड़ेपन को उपनिवेशी शासन का परिणाम माना। उनका मानना था कि देश के विभिन्न वर्ग के लोगों, यथा-कृषक, शिल्पकार, दस्तकार, मज़दूर, बुद्धिजीवी, शिक्षित एवं व्यापारियों आदि सभी के हित विदेशी शासन की भेंट चढ़ गए हैं।

अंग्रेज़ों की भेदभाव पूर्ण नीतियों ने आधुनिक राष्ट्रवाद के विकास में योगदान दिया। देशवासियों का मानना था कि देश में जब तक विदेशी शासन रहेगा, लोगों के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक तथा राजनीतिक हितों पर कुठाराघात होता रहेगा।

कॉन्ग्रेस की स्थापना (1885) से पूर्व भारत व लंदन में कई राजनीतिक संस्थाओं का गठन हुआ। बंगाल, बंबई एवं मद्रास में इन राजनीतिक संस्थाओं ने पत्र-पत्रिका, अखबार एवं जनसभाओं आदि माध्यमों से लोगों को अपने अधिकारों के लिये जागरूक किया। परिणामत: लोगों में राष्ट्रीयता की भावना जागृत हुई। सामान्य जनता अब आंदोलनों में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेने लगी। निश्चित ही भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के इस प्रारंभिक दौर में इन संस्थाओं ने राष्ट्रवादी विचारों के विकास में अपनी महती भूमिका निभाई।

बंगाल में राजनीतिक संस्थाएँ

लैंडहोल्डर्स सोसायटी या ज़मींदारी एसोसिएशन

- लैंडहोल्डर्स सोसायटी की स्थापना 1838 में द्वारकानाथ टैगोर द्वारा कलकत्ता में की गई थी।
- ध्यातव्य है कि लैंडहोल्डर्स सोसायटी पहली राजनीतिक सभा थी, जिसने संगठित राजनीतिक प्रयासों का शुभारंभ किया। इस संस्था ने ज़मींदारों के हितों की सुरक्षा तथा उनकी शिकायतों को दूर करने के लिये संवैधानिक उपचारों का प्रयोग किया।
- कलकत्ता के ज़मींदारों की यह सभा इंग्लैंड की 'ब्रिटिश इंडिया सोसायटी' को भी सहयोग करती थी, जिसकी स्थापना विलियम एडम्स द्वारा की गई थी।
- लैंडहोल्डर्स सोसायटी के प्रमुख भारतीय नेता द्वारकानाथ टैगोर, राधाकांत देव, प्रसन्न कुमार ठाकुर आदि ज़मींदार थे। इसलिये इसे 'ज़मींदारी एसोसिएशन' भी कहा जाता है।

बंगाल ब्रिटिश इंडिया सोसायटी

- 1843 में जॉर्ज थॉमसन की अध्यक्षता में 'बंगाल ब्रिटिश इंडिया सोसायटी' नामक राजनीतिक सभा की स्थापना हुई। यह भारतीय तथा गैर-सरकारी अंग्रेज़ों का सम्मिलित संगठन था।
- इस सभा का मुख्य उद्देश्य अंग्रेज़ी शासन में भारतीयों की वास्तविक अवस्था के विषय में जानकारी प्राप्त कर उनका प्रचार-प्रसार करना तथा जनता की उन्नति व न्यायपूर्ण अधिकारों के लिये शांतिमय और कानूनी साधनों का प्रयोग करना था।

ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन

- अक्तूबर 1851 में ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन की स्थापना कलकत्ता में राधाकांत देव की अध्यक्षता में की गई। इसके अन्य प्रमुख सदस्यों में देवेंद्रनाथ टैगोर, रामगोपाल घोष, प्यारी चंद्र मित्र, कृष्णदास पाल आदि थे।
- पूर्ववर्ती दोनों प्रमुख संस्थाओं (लैंडहोल्डर्स सोसायटी एवं बंगाल ब्रिटिश इंडिया सोसायटी) की असफलताओं के कारण इन दोनों को मिलाकर 'ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन' का गठन किया गया।
- यह संस्था भूमिपतियों के हितों के लिये मुख्य रूप से कार्यरत थी। इसी के प्रयासों से 1853 में चार्टर के नवीकरण के समय ब्रिटिश संसद को प्रार्थना पत्र भेजा गया था। इस प्रार्थना पत्र में एक लोकप्रिय विधानसभा, न्यायिक एवं दंडनायक कार्य पृथक् किये जाने, अधिकारियों के वेतन कम किये जाने तथा नमक, आबकारी व स्टांप कर को समाप्त किये जाने आदि की मांग की गई।
- इसके परिणामस्वरूप 1853 के चार्टर एक्ट में गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में 6 नए सदस्यों को कानून बनाने के लिये जोड़ लिया गया।
- इस संगठन ने नील विद्रोह की जाँच हेतु आयोग बैठाने की मांग की थी।
- 'हिंदू पैट्रियट' इस संस्था का मुख्य पत्र था।

इंडियन लीग

- 25 सितंबर, 1875 को शिशिर कुमार घोष द्वारा इंडियन लीग की स्थापना कलकत्ता में की गई।
- इसके अस्थायी अध्यक्ष शंभू चंद्र मुखर्जी थे।
- इस संस्था का मुख्य उद्देश्य लोगों में राष्ट्रवाद की भावना का विकास कर राजनीतिक शिक्षा को प्रोत्साहन देना था।

इंडियन एसोसिएशन (भारत संघ)

- 26 जुलाई, 1876 को सुरेंद्रनाथ बनर्जी ने आनंद मोहन बोस के सहयोग से कलकत्ता के अल्बर्ट हॉल में इसकी स्थापना की। सुरेंद्रनाथ बनर्जी इसके संस्थापक तथा आनंद मोहन बोस इसके सचिव थे। सुरेंद्रनाथ बनर्जी को 'राष्ट्र गुरु' के नाम से भी जाना जाता है।
- इंडियन एसोसिएशन की स्थापना, इंडियन लीग के स्थान पर की गई थी।
- इसका उद्देश्य मध्यम वर्ग के साथ-साथ साधारण वर्ग को भी इसमें सम्मिलित करना था, इस कारण इसका चंदा पाँच रुपये वार्षिक रखा गया।

32 राष्ट्रीय आंदोलन (1885–1947 ई.)
National Movement (1885-1947 AD.)

कॉन्ग्रेस की स्थापना (Establishment of Congress)

भूमिका

ब्रिटिश शासन से पूर्व भारत आर्थिक दृष्टि से एक आत्मनिर्भर राष्ट्र था, किंतु ब्रिटिश शासन की स्थापना और उनकी आर्थिक नीतियों के कारण भारत की आर्थिक स्थिति दयनीय हो गई। परिणामत: आर्थिक बदहाली के कारण भारत की जनता में भयंकर असंतोष पनपा जो समय-समय पर विभिन्न आंदोलनों के माध्यम से दिखने लगा था। हालाँकि अभी तक जो आंदोलन हुए, उनमें राजनीतिक सहभागिता या राजनीतिक हिस्सेदारी की मांग नगण्य ही थी। 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस की स्थापना के साथ इस अंतराल को पाटने की एक शुरुआत की गई। भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस की स्थापना के साथ छोटे पैमाने पर ही सही लेकिन संगठित रूप में विदेशी शासन से भारत की मुक्ति का संघर्ष प्रारंभ हो गया। राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस राजनीतिक चेतना प्राप्त भारतीयों की इस आकांक्षा का प्रतिनिधित्व करती थी कि उनकी आर्थिक और राजनीतिक प्रगति के लिये कार्यरत एक राजनीतिक संगठन बनाया जाए। यह संस्था अखिल भारतीय स्तर पर राष्ट्रवाद की पहली सुनियोजित अभिव्यक्ति थी।

कॉन्ग्रेस की स्थापना

- भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस की स्थापना, एक अवकाश प्राप्त अंग्रेज़ आई.सी.एस. अधिकारी एलन ऑक्टेवियन ह्यूम (ए.ओ. ह्यूम) द्वारा दिसंबर 1885 में की गई। इसका प्रथम अधिवेशन पुणे में आयोजित किया जाना था, लेकिन उस समय पुणे में प्लेग फैल जाने के कारण यह अधिवेशन बंबई में आयोजित किया गया। इसका प्रथम अधिवेशन 28 दिसंबर, 1885 को बंबई के ग्वालिया टैंक में स्थित 'गोकुलदास तेजपाल संस्कृत कॉलेज' में हुआ।
- प्रारंभ में इसका नाम 'भारतीय राष्ट्रीय संघ' रखा गया था, लेकिन बाद में दादाभाई नौरोजी के सुझाव पर इसका नाम बदलकर 'भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस' कर दिया गया। भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस की स्थापना के समय भारत का वायसराय लॉर्ड डफरिन था।
- बंबई के पहले अधिवेशन में भाग लेने वाले अधिकतर नेता वकील एवं पत्रकार थे। इस सम्मेलन में भाग लेने वाले सदस्यों की संख्या 72 थी जो कि अधिकांश वर्गों का प्रतिनिधित्व करते थे। इसमें सर्वाधिक सदस्य बंबई प्रांत से (38 सदस्य) थे। इस अधिवेशन के प्रथम अध्यक्ष व्योमेश चंद्र बनर्जी तथा सचिव ए.ओ. ह्यूम थे। इसके प्रमुख सदस्यों में शामिल थे फिरोज़शाह मेहता, बदरुद्दीन तैय्यबजी, डब्ल्यू.सी. बनर्जी, आनंद मोहन बोस और रोमेश चंद्र दत्त आदि। उल्लेखनीय है कि भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस के स्थापना अधिवेशन में सुरेंद्रनाथ बनर्जी शामिल नहीं हुए थे, क्योंकि इसी समय इंडियन एसोसिएशन कॉन्फ्रेंस का दूसरा 'अखिल भारतीय सम्मेलन' आयोजित होना था। 1886 में इंडियन एसोसिएशन कॉन्फ्रेंस का विलय भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस में हो गया।
- सर सैय्यद अहमद खाँ ऐसे व्यक्ति थे, जो भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस से कभी भी संबद्ध नहीं रहें। उल्लेखनीय है कि बाल गंगाधर तिलक कॉन्ग्रेस सदस्य होते हुए भी कभी भी इसके अध्यक्ष नहीं चुने गए।

कॉन्ग्रेस की स्थापना से संबंधित विवाद/मत/सिद्धांत

- विभिन्न इतिहासकारों के बीच मतभेद है कि कॉन्ग्रेस की स्थापना के पीछे वह दृढ़ राजनीतिक इच्छा शक्ति थी, जिससे भारतीय जन में पनपते असंतोष व विद्रोह की भावना को नियंत्रित किया जा सके। उनका मानना है कि तत्कालीन वायसराय लॉर्ड डफरिन (1884-88) के परामर्श पर ह्यूम ने इस संगठन को जन्म दिया।
- 'सेफ्टी वॉल्व सिद्धांत' के मतानुसार डफरिन के निर्देश पर ह्यूम ने कॉन्ग्रेस की स्थापना इस उद्देश्य से की थी कि 1857 की क्रांति की विफलता के बाद भारतीय जनता में पनपता असंतोष किसी भी रूप में उग्र रूप धारण न करे और असंतोष के इस वाष्प को बिना खतरे के कॉन्ग्रेस रूपी सुरक्षा वॉल्व (Safety Valve) से बाहर निकाला जा सके। सेफ्टी वॉल्व का सिद्धांत लाला लाजपत राय ने 'यंग इंडिया' में प्रकाशित अपने एक लेख में दिया था।
- लाला लाजपत राय के अनुसार ह्यूम को इस बात का विश्वास हो चला था कि भारत में शीघ्र ही भयंकर विस्फोट होने की संभावना है, जिससे ब्रिटेन का भारतीय साम्राज्य विनष्ट हो जाएगा। उन्होंने अपने 'यंग इंडिया' में एक लेख में, 'कॉन्ग्रेस को डफरिन के दिमाग की उपज' बताया। इसके बाद अपनी बात आगे बढ़ाते हुए उन्होंने लिखा था कि *"कॉन्ग्रेस की स्थापना का उद्देश्य राजनीतिक आज़ादी हासिल करने से कहीं ज़्यादा यह था कि उस समय ब्रिटिश साम्राज्य पर आसन्न ख़तरों से उसे बचाया जा सके। कॉन्ग्रेस के लिये ब्रिटिश साम्राज्य के हित पहले स्थान पर थे और भारत के हित दूसरे स्थान पर। कोई यह नहीं कह सकता है कि कॉन्ग्रेस अपने उस आदर्श (अंग्रेज़ी साम्राज्य के प्रति निष्ठा) के प्रति ईमानदार नहीं रही है।"*
- सेफ्टी वॉल्व सिद्धांत के प्रत्युत्तर में कॉन्ग्रेस के आरंभिक नेताओं ने कॉन्ग्रेस के संस्थापक ए.ओ. ह्यूम का 'तड़ित चालक' के रूप में प्रयोग किया।

33 भारत के गवर्नर जनरल तथा वायसराय

(Governor General and Viceroy of India)

बंगाल के गवर्नर	
गवर्नर	**कार्यकाल की महत्त्वपूर्ण घटनाएँ**
रॉबर्ट क्लाइव (1757-60 और 1765-67)	● 1757 का प्लासी का युद्ध ● बंगाल के समस्त क्षेत्र के लिये उप-दीवान नियुक्त बंगाल के लिये मुहम्मद रजा खाँ, बिहार के लिये राजा शिताबराय तथा उड़ीसा के लिये रायदुर्लभ की नियुक्ति की। ● बंगाल में द्वैध शासन का जनक ● श्वेत विद्रोह ● 1765 में इलाहाबाद की संधियाँ (अवध के नवाब शुजाउद्दौला एवं मुगल सम्राट शाहआलम द्वितीय के साथ) ● सलावत जंग तथा आलमगीर-II द्वारा 'उमरा' की उपाधि दी गई। ● क्लाइव ने सेना के तीन केंद्रों की स्थापना की- इलाहाबाद, मुंगेर व बांकीपुर (पश्चिम बंगाल)
वेन्सिटार्ट (1760-64)	● बक्सर का युद्ध (1764)
कर्टियर (1769-72)	● बंगाल में अकाल (1770)
वारेन हेस्टिंग्स (1772-74)	● बंगाल का अंतिम गवर्नर ● बंगाल में द्वैध शासन को समाप्त किया। ● 1772 में प्रत्येक ज़िले में एक फौजदारी तथा दीवानी अदालतों की स्थापना।
बंगाल के गवर्नर जनरल	
वारेन हेस्टिंग्स (1774-85)	● रेग्युलेटिंग एक्ट (1773) के तहत वारेन हेस्टिंग्स को बंगाल का प्रथम गवर्नर जनरल बनाया गया। ● 1781 का अधिनियम- इसके तहत गवर्नर जनरल तथा उसकी काउंसिल एवं कलकत्ता उच्च न्यायालय के मध्य शक्तियों का कार्यक्षेत्र स्पष्ट रूप से विभाजित कर दिया गया। ● नंद कुमार पर अभियोग लगाकर फाँसी; इस मुकदमें को 'न्यायिक हत्या' की संज्ञा दी जाती है। ● 1781 में मुस्लिम शिक्षा सुधार के लिये कलकत्ता में प्रथम मदरसा स्थापित। ● 1775–82 का प्रथम मराठा युद्ध तथा 1782 में सालबाई की संधि। ● 1780–84 का द्वितीय आंग्ल-मैसूर युद्ध व मंगलौर की संधि। ● 1784 का पिट्स इंडिया एक्ट, जिसमें परिषद् के सदस्यों की संख्या 4 से घटाकर 3 कर दी गई। ● 1784 में विलियम जोंस द्वारा 'एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल' की स्थापना। ● चार्ल्स विलकिंस द्वारा 'गीता व हितोपदेश' का अंग्रेजी में अनुवाद। ● राजकीय कोषागार मुर्शिदाबाद से कलकत्ता स्थानांतरित। ● इज़ारेदारी प्रथा का प्रारंभ। ● हिंदू और मुस्लिम कानूनों को संहिताबद्ध किया। ● अभिज्ञान शाकुंतलम का अंग्रेज़ी अनुवाद कराया गया। ● देशी रियासतों के साथ घेरे की नीति अपनाई। ● 1775 में आसफुद्दौला के साथ फैज़ाबाद की संधि।

नोट: पिट्स इंडिया एक्ट (1784) के विरोध में इस्तीफा देकर जब वारेन हेस्टिंग्स 1785 में इंग्लैंड पहुँचा तो एडमंड बर्क द्वारा उसके ऊपर महाभियोग का मुकदमा दायर किया गया परंतु 1795 में इसे सभी आरोपों से मुक्त कर दिया गया।

34 भारत में संवैधानिक विकास (Constitutional Development in India)

भूमिका

1765 में कंपनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी प्राप्त हुई। दीवानी अधिकार मिलते ही कंपनी के कर्मचारियों ने बंगाल में लूट-खसोट एवं व्यक्तिगत व्यापार द्वारा धन एकत्र करने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन दिया। साथ ही, कंपनी द्वारा लगातार युद्धरत रहने से कंपनी की वित्तीय स्थिति खराब हुई तथा उसे भारी आर्थिक क्षति का सामना करना पड़ा। स्थिति इतनी गंभीर थी कि वह अपने कर्मचारियों के वेतन भुगतान में भी असमर्थता का अनुभव कर रही थी। फलतः कंपनी ने ब्रिटिश संसद से आर्थिक सहायता के लिये प्रस्ताव किया। प्रतिवेदन के फलस्वरूप ब्रिटिश संसद द्वारा रेग्युलेटिंग एक्ट पारित किया गया।

रेग्युलेटिंग एक्ट, 1773

भारत के संवैधानिक इतिहास में सन् 1773 का रेग्युलेटिंग एक्ट विशेष महत्त्व रखता है। यह अधिनियम (Act) भारत में कंपनी के प्रशासन पर ब्रिटिश संसदीय नियंत्रणों के प्रयासों की शुरुआत थी। परिणामतः अब कंपनी के शासनाधीन क्षेत्रों का प्रशासन कंपनी के व्यापारियों का निजी मामला नहीं रहा। इस एक्ट में उल्लिखित प्रावधान निम्नवत् थे-

- इस एक्ट के द्वारा कलकत्ता में उच्चतम न्यायालय (Supreme Court) की स्थापना की गई। इसमें एक मुख्य न्यायाधीश तथा तीन अन्य न्यायाधीश होते थे। उच्चतम न्यायालय को प्राथमिक तथा अपील के अधिकार दिये गए। यह न्यायालय सन् 1774 में गठित किया गया तथा सर एलिजाह इम्पे (Elijah Impey) को इसका मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया गया तथा चेम्बर्स, लिमेस्टर एवं हाइड अन्य न्यायाधीश नियुक्त हुए।
- इस अधिनियम के द्वारा बंगाल के गवर्नर को 'बंगाल का गवर्नर जनरल' पद नाम दे दिया गया। साथ ही, उसे कुछ विशेष मामलों में मद्रास तथा बंबई की प्रेसिडेंसियों का अधीक्षण भी करना था। बंगाल में एक प्रशासक मंडल बनाया गया, जिसमें गवर्नर जनरल तथा चार सदस्यों को नियुक्त किया गया। प्रथम गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स तथा चार अन्य सदस्य फिलिप फ्राँसिस, क्लेवरिंग, मॉनसन तथा बारवेल थे। ये कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स की सिफारिश पर केवल ब्रिटिश सम्राट द्वारा ही हटाये जा सकते थे।
- प्रशासक मंडल के सदस्यों का निर्वाचन 5 वर्षों के लिये किया जाना था। इस मंडल में बहुमत से निर्णय होते थे। मत बराबर होने की स्थिति में अध्यक्ष अपना मत देता था।
- इस अधिनियम के अनुसार कंपनी के अधीन कोई सैनिक अथवा असैनिक अधिकारी निज़ी व्यापार तथा भारतीयों से किसी भी प्रकार का उपहार, दान या पारितोषिक ग्रहण नहीं कर सकते थे।
- इस अधिनियम में यह व्यवस्था की गई कि कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स अब 4 वर्ष के लिये चुना जाएगा और इनकी संख्या बढ़ाकर 24 कर दी गई, जिसमें एक चौथाई (6 सदस्य) प्रतिवर्ष अवकाश प्राप्त करेंगे।
- इस अधिनियम के द्वारा ब्रिटिश क्राउन का 'कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स' के माध्यम से कंपनी पर नियंत्रण और सशक्त हो गया। इसको भारत के राजस्व, नागरिक एवं सैन्य मामलों संबंधी जानकारी ब्रिटिश क्राउन के साथ साझा करना अनिवार्य कर दिया गया।
- कंपनी के अधिकारियों एवं कर्मचारियों का वेतन बढ़ा दिया गया।

1781 का संशोधनात्मक अधिनियम

- यह संशोधन अधिनियम 1773 के रेग्युलेटिंग एक्ट की विसंगतियों को दूर करने के लिये लाया गया।
- इसे 'एक्ट ऑफ सेटलमेंट' के नाम से भी जाना जाता है।
- इस अधिनियम के अनुसार कंपनी के पदाधिकारी अपने शासकीय रूप में किये गए कार्यों के लिये उच्चतम न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से बाहर हो गए।
- उच्चतम न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को और स्पष्ट किया गया तथा उसे कलकत्ता के सभी निवासियों पर लागू कर दिया गया।
- इस अधिनियम में यह प्रावधान किया गया कि, उच्चतम न्यायालय को अपनी आज्ञाएँ व आदेश लागू करते समय एवं सरकार को नियम व विनियम बनाते समय भारतीयों के धार्मिक तथा सांस्कृतिक रीति-रिवाज़ों को ध्यान में रखना होगा।
- अब गवर्नर जनरल की परिषद् द्वारा बनाए गए नियम को सर्वोच्च न्यायालय में पंजीकृत कराना आवश्यक नहीं था।
- कुल मिलाकर, 1781 का संशोधनात्मक अधिनियम कार्यपालिका एवं न्यायपालिका के बीच शक्ति पृथक्करण की दिशा में बड़ा कदम था।

पिट्स इंडिया एक्ट, 1784

- सरकार का कंपनी के मामलों में नियंत्रण बढ़ गया।
- छह सदस्यीय नियंत्रण बोर्ड (Board of Control) का गठन किया गया तथा सभी असैनिक, सैनिक तथा राजस्व संबंधी मामलों को एक नियंत्रण बोर्ड के अधीन कर दिया गया। इसमें यह भी निर्दिष्ट था कि गवर्नर जनरल की परिषद् के सदस्य अनुबंधित सेवक (Covenanted Servant) ही होंगे।
- भारत में प्रशासन गवर्नर जनरल तथा उसकी चार के स्थान पर तीन सदस्यों वाली परिषद् के हाथ में दे दिया गया। यद्यपि उसे अभी भी बहुमत के आधार पर कार्य करना होता था।

35 विविध (Miscellaneous)

स्वाधीनता संग्राम के समय की कुछ प्रमुख कृतियाँ					
पुस्तक		लेखक/लेखिका	पुस्तक		लेखक/लेखिका
अनहैप्पी इंडिया	:	लाला लाजपत राय	एन इंट्रोडक्सन टू दी ड्रीमलैंड	:	भगत सिंह
बंदी जीवन	:	सचींद्र नाथ सान्याल	अ नेशन इन द मेकिंग	:	सुरेंद्रनाथ बनर्जी
इंडिया डिवाइडेड	:	राजेंद्र प्रसाद	फाउंडेशन ऑफ इंडियन कल्चर, द लाइफ डिवाइन	:	श्री अरबिंदो
पाकिस्तान ऑर द पार्टीशन ऑफ इंडिया, अनाइहिलेशन ऑफ कास्ट	:	बी.आर. अंबेडकर	गिल्टी मैन ऑफ इंडियाज़ पार्टीशन	:	राम मनोहर लोहिया
द फिलॉसफी ऑफ द बॉम्ब	:	भगवती चरण बोहरा	माई एक्सपेरिमेंट विद ट्रुथ	:	महात्मा गांधी
सत्यार्थ प्रकाश	:	दयानंद सरस्वती	इंडियन स्ट्रगल	:	सुभाष चंद्र बोस
पावर्टी एंड अनब्रिटिश रूल इन इंडिया	:	दादाभाई नौरोजी	आनंद मठ, दुर्गेश नंदिनी	:	बंकिम चंद्र चटर्जी
इंडिया विन्स फ्रीडम	:	मौलाना अबुल कलाम आज़ाद	तराना-ए-हिंद	:	मोहम्मद इकबाल
डिस्कवरी ऑफ इंडिया	:	जवाहरलाल नेहरू	इंडिया फ्रॉम कर्ज़न टू नेहरू एंड आफ्टर	:	दुर्गा दास
द स्कोप ऑफ हैप्पीनेस	:	विजयलक्ष्मी पंडित	द इंडियन वार ऑफ इंडिपेंडेंस, 1857	:	वी.डी. सावरकर
गोल्डन थ्रेशहोल्ड, सॉन्गस ऑफ इंडिया	:	सरोजिनी नायडू	गीतांजलि (अंग्रेज़ी संस्करण 1912)	:	रवींद्रनाथ टैगोर
द बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स	:	जवाहरलाल नेहरू	नील दर्पण	:	दीनबंधु मित्र
इंडियन फिलॉसफी	:	डॉ. राधाकृष्णन	हिंट्स फॉर सेल्फ कल्चर	:	लाला हरदयाल
रिडल्स इन हिंदूइज्म	:	डॉ. भीमराव अंबेडकर	इंडिया अनरेस्ट	:	वैलेन्टाइन शिरोल
हिंद स्वराज, गोखले माई पॉलिटिकल गुरु	:	महात्मा गांधी	इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया	:	आर. सी. दत्त
गीता रहस्य	:	बाल गंगाधर तिलक	द क्रीसेंट मून, द पोस्ट ऑफिस	:	रवींद्रनाथ टैगोर
मदर इंडिया	:	कैथरीन मेयो	भवानी मंदिर	:	बारींद्र कुमार घोष

ब्रिटिश भारत में प्रकाशित समाचार-पत्र एवं पत्रिका				
समाचार पत्र	भाषा	वर्ष	प्रकाशन-स्थल	संस्थापक/संपादक
बंगाल गजट	अंग्रेज़ी	1780	कलकत्ता	जेम्स ऑगस्टस हिक्की (भारत का पहला समाचार पत्र)
उदन्त मार्तण्ड	हिंदी (हिंदी भाषा में पहला साप्ताहिक समाचार पत्र)	1826	कलकत्ता	जुगल किशोर
अमृत बाज़ार पत्रिका	बांग्ला, 1878 से अंग्रेज़ी में प्रकाशन	1868	कलकत्ता	मोतीलाल घोष, शिशिर कुमार घोष
पायनियर	अंग्रेज़ी	1865	इलाहाबाद	जॉर्ज एलन (कुछ स्रोतों में जुलियन रॉबिन्सन भी मिलता है।)
सोमप्रकाश	बांग्ला	1859	कलकत्ता	ईश्वर चंद्र विद्यासागर
हिंदू	अंग्रेज़ी	1878	मद्रास	वीर राघवाचारी
केसरी, मराठा	केसरी मराठी में, जबकि मराठा अंग्रेज़ी में प्रकाशित	1881	पुणे	बाल गंगाधर तिलक

Think IAS | Think Drishti

दृष्टि The Vision

दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम (Distance Learning Programme)

इस कार्यक्रम के अंतर्गत आप घर बैठे 'दृष्टि' द्वारा तैयार परीक्षोपयोगी पाठ्य-सामग्री मंगवा सकते हैं। यह पाठ्य-सामग्री विशेष रूप से ऐसे अभ्यर्थियों को ध्यान में रखकर तैयार की गई है जो दिल्ली आकर कक्षाएँ करने में असमर्थ हैं। इस कार्यक्रम के अंतर्गत सिविल सेवा और राज्य सेवा (उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, उत्तराखंड, छत्तीसगढ़ पी.सी.एस.) परीक्षाओं की पाठ्य-सामग्री उपलब्ध कराई जाती है। यह पाठ्य-सामग्री प्रत्येक परीक्षा के नवीनतम पाठ्यक्रम के अनुरूप है और इसे विभिन्न समसामयिक घटनाओं, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं एवं समितियों की रिपोर्टों के माध्यम से अद्यतन (up-to-date) किया गया है।

उत्तर प्रदेश पी.सी.एस. (UPPCS) के लिये

सामान्य अध्ययन + सीसैट
(प्रा.+ मुख्य परीक्षा)
(33 + 10 बुकलेट्स) (₹15,500/-)

सामान्य अध्ययन
(प्रा.+ मुख्य परीक्षा)
(33 बुकलेट्स) (₹14,000/-)

मध्य प्रदेश पी.सी.एस. (MPPCS) के लिये

सामान्य अध्ययन + सीसैट
(प्रा.+ मुख्य परीक्षा)
(28 + 8 बुकलेट्स) (₹11,000/-)

सामान्य अध्ययन
(प्रा.+ मुख्य परीक्षा)
(28 बुकलेट्स) (₹10,000/-)

उत्तराखंड पी.सी.एस. (UKPSC) के लिये

सामान्य अध्ययन + सीसैट
(प्रा.+ मुख्य परीक्षा)
(28 + 8 बुकलेट्स) (₹11,000/-)

सामान्य अध्ययन
(प्रा.+ मुख्य परीक्षा)
(28 बुकलेट्स) (₹10,000/-)

छत्तीसगढ़ पी.सी.एस. (CGPSC) के लिये

सामान्य अध्ययन + सीसैट
(प्रा.+ मुख्य परीक्षा)
(35 + 6 बुकलेट्स) (₹15,500/-)

सामान्य अध्ययन
(प्रा.+ मुख्य परीक्षा)
(35 बुकलेट्स) (₹14,000/-)

राजस्थान पी.सी.एस. (RAS/RTS) के लिये

सामान्य अध्ययन
(प्रा.+ मुख्य परीक्षा)
(34 बुकलेट्स) ₹10,500/-

बिहार पी.सी.एस. (BPSC) के लिये

सामान्य अध्ययन
(प्रा.+ मुख्य परीक्षा)
(25 बुकलेट्स) ₹10,000/-

For UPSC CSE (in English Medium)

Self Learning Modules

Students may opt for following modules

- Prelims (17 GS + 3 CSAT Booklets) ₹10000/-
- Mains (18 GS Booklets) ₹11000/-
- Prelims + Mains (33 GS + 3 CSAT Booklets) ₹15000/-

Offer: Free 6 months subscription of Drishti Current Affairs Today magazine with every module

For UPPCS Mains (in English Medium)

Self Learning Modules

19 GS + 1 Essay +
1 Compulsory Hindi Booklets
₹11000/-

Offer: Free 6 months subscription of Drishti Current Affairs Today magazine for comprehensive coverage of current affairs

UPSC सिविल सेवा परीक्षा के लिये (हिंदी माध्यम में)

सामान्य अध्ययन
(प्रारंभिक परीक्षा)
(19 बुकलेट्स) ₹10,000/-

सामान्य अध्ययन
(मुख्य परीक्षा)
(26 बुकलेट्स) ₹13,000/-

सामान्य अध्ययन + सीसैट
(प्रारंभिक परीक्षा)
(27 बुकलेट्स) ₹13,000/-

सामान्य अध्ययन
(प्रा.+ मुख्य परीक्षा)
(31 बुकलेट्स) ₹15,000/-

सामान्य अध्ययन + सीसैट
(प्रा.+ मुख्य परीक्षा)
(39 बुकलेट्स) ₹17,500/-

इतिहास
(वैकल्पिक विषय)
(12 बुकलेट्स) ₹7,000/-

दर्शनशास्त्र
(वैकल्पिक विषय)
(4 बुकलेट्स) ₹5,000/-

हिन्दी साहित्य
(वैकल्पिक विषय)
(13 बुकलेट्स) ₹7,000/-

विस्तृत जानकारी के लिये कॉल करें : 8448485520, 87501-87501, 011-47532596

दृष्टि पब्लिकेशन्स की प्रमुख पुस्तकें

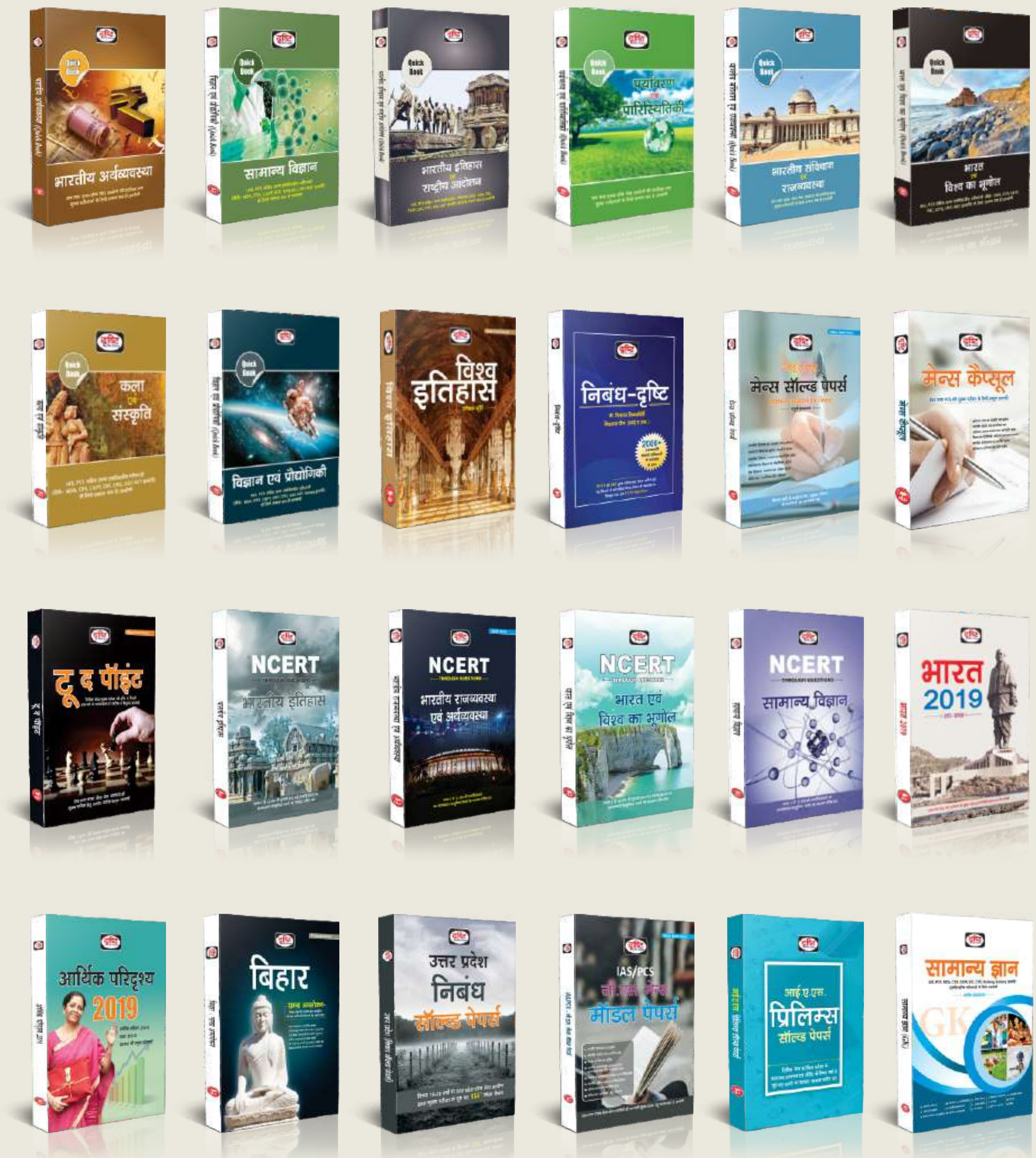

Drishti Publications
dp

641, Ist Floor, Dr. Mukherji Nagar, Delhi-9
Ph.: 011-47532596, 87501 87501
Website: www.drishtipublications.com, www.drishtiias.com
E-mail: booksteam@groupdrishti.com

ISBN 978-81-934662-4-7

मूल्य : ₹ 360